प्राथमिक शिक्षा के मुद्दे

डी. पी. ई. पी.

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम

भाग – 1, अंक 5, नवम्बर-दिसम्बर, 1999 प्राथमिक शिक्षा पर लेख

- मस्तिष्क में बसे प्रेत
- तोते का शिक्षण
- कक्षा के अन्दर
- खिलौनों का संसार

और

यह ईटें खिलौना नहीं है

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

आपका संवाद पत्र 'प्राथमिक शिक्षा के मुद्दे' बहुत लाभदायक रहा। पिछले अंक में आपने बताया था कि असाम में पाँसे के साथ कम से कम 50 खेल इस्तेमाल में लाए जा रहे है। आपके कथन 'आप अपने मित्रों के साथ दिमाग लगाकर इस सूची को 50 से आगे क्यों नहीं ले जाते?' ने मुझे पाँसे से कम से कम 35 गतिविधियाँ तैयार करने के लिए प्रेरित किया। मैंने ये खेल स्थानीय प्राथमिक विद्यालय में खिलाए और बच्चों ने बहुत मजे से ये खेल खेले। मै आपको इनमें से कुछ गतिविधियाँ भेज रही हूँ।

लीला हिरेमट्ट
शासकीय पूर्व - विश्वविद्यालय महाविद्यालय
डोड्डा हरिजना वाड़ा,
राएचूर, कर्नाटक

मै आपके संवादपत्र के सम्बन्ध में एक सुझाव देना चाहती हूँ। संवादपत्र में एक भाग ऐसा हो जिसमें अध्यापक वे कठिनाईयाँ लिख सकें जिनका सामना वे कक्षा में करते है और इन कठिनाईयों के सम्बन्ध में आपके उत्तर भी होने चाहिए। इसके अतिरिक्त, इन मुश्किलों का सामना करते समय अध्यापकों द्वारा किए गए प्रयास भी उदाहरण के रूप में लिखे जा सकते है। इससे पाठकों में अपनत्व की भावना को विकसित करने में मदद मिलेगी।

श्रीमती संतोषी सेन
अध्यापक, बेनी सागर पन्ना, मध्य प्रदेश

संवादपत्र भेजने के लिए शुक्रिया। अगर संभव हो तो कृपया गणना, गुणा और स्थानीय मान से सम्बन्धित कुछ गतिविधियाँ भेजने का कष्ट करें।

के.जी. देवरमणी
व्याख्याता,
डायट धारवाड़, कर्नाटक

जैसा आप जानते है कि हम महाराष्ट्र के दो जिलों में प्राथमिक शिक्षा संवर्धन योजना (PEEP) लागू कर रहे है। मैंने 'प्राथमिक शिक्षा के मुद्दे' का सितम्बर - अक्टूबर अंक पढ़ा और सभी लेखों को उपयोगी पाया। अगर यह मासिक पत्रिका PEEP सैलों और PEEP जिलों की हर डाइट को हर महीने मिलती जाए तो बहुत अच्छा होगा।

हमें खुशी होगी अगर आप चन्द्रपुर और यवतमाल जिलों में प्रोजेक्ट स्टाफ के दिए गए पतो पर इस पत्रिका के हिन्दी अंक की एक-एक प्रति भेजने की व्यवस्था कर सकें।

नन्द कुमार (आइ.ए.एस.)
15, सागर बिल्डिंग,
'बी' रोड, चर्चगेट, मुम्बई - 400020

'प्राथमिक शिक्षा के मुद्दे' भेजने के लिए शुक्रिया। यह बुलेटिन व्यापक रूप से शिक्षा में काम कर रहे कर्मिकों - कार्यरत अध्यापकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, प्रबंधकों आदि के लिए उपयोगी है। इसे बनाए रखें। मै समय-समय पर अपना योगदान देना चाहूँगा। नाम सुझाने के लिए मुझे बहुत सोच विचार करना होगा, परन्तु मुझे लगता है कि इसके लिए शायद बहुत देर हो चुकी है - फरवरी खत्म होने वाली है। 'सन्दर्भ' की तरह लगता है यह बुलेटिन भी समय से बहुत पीछे चल रहा है।

डॉ. अरविन्द गुप्ता,
A/HD.13, सुक्लिया इन्दौर - 452010

शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय (जो पहले सेन्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ ऐजूकेशन के नाम से जाना जाता था) शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रमुख संस्था है और यहाँ बी.एड., एम.एड., एम.फिल और पी.एच.डी. कार्यक्रम है। यहाँ प्रति वर्ष 400 छात्र और शोधकर्त्ता पढ़ने आते है। मैंने आपका प्रकाशन 'प्राथमिक शिक्षा के मुद्दे' पढ़ा। यह बहुत रोचक है और हमारे छात्रों के लिए उपयोगी रहेगा। मै बहुत आभारी रहूंगा अगर आप हमारे विभाग के पुस्तकालय को अपना यह प्रकाशन भेजते रहें जिससे हमारे छात्र-छात्राएँ इसका उपयोग कर सकेंगे।

पुस्तकालाध्यक्ष, शिक्षा विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
33, छात्र मार्ग, दिल्ली - 110 007

बहुत सी गतिविधियाँ भेजने के लिए हम अपने पाठकों का शुक्रिया अदा करते है। इन्हें हम आगे आने वाले अंकों में सम्मिलित करेंगे। हमें संवाद पत्र के नाम के लिए भी बहुत सारे सुझाव मिले है। इन पर अभी सोच विचार चल रहा है।

अनुक्रमणिका

मस्तिष्क में बसे प्रेत	3
यह ईंटें खिलौना नहीं है	11
तोते का शिक्षण	14
कक्षा के अन्दर	17
खिलौनों का संसार	22
संस्थाएँ जो अलग दिखती है	27
पुस्तक-प्रेमियों के लिए NBT का उपहार	28

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) ब्यूरो, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के लिए एडसिल द्वारा प्रकाशित।

डिज़ाइन और चित्रांकन
अतनु रॉय

अनुवाद - शिल्पी जैन

आगे पत्राचार इन लोगों से करें :
सुश्री विपाशा अग्निहोत्री
एजूकेशनल कन्सलटेन्ट्स इण्डिया लिमिटेड
तकनीकी अनुसमर्थन समूह
बी - 86, डिफैन्स कॉलोनी,
नई दिल्ली - 110024
फोन : 4647687/9172
या
सुश्री रशमी शर्मा, निदेशक, डी.पी.ई.पी.
ब्यूरो, मानव संसाधन विकास मंत्रालय,
शास्त्री भवन, नई दिल्ली - 110 001
फांन : 3782883

मस्तिष्क में बसे प्रेत

इस अंक में हम बच्चों व शिक्षकों के प्रति हमारे रवैये का मसला उठा रहे हैं। हम इस बात को भी समझने का प्रयास करेगें कि शिक्षक बच्चों को किस दृष्टि से देखते हैं। हमारा दृष्टिकोण व हमारी मान्यताएं ही हमारे दिमाग के प्रेत हैं। उन्हीं से हमारा व्यवहार निर्धारित होता है। अक्सर हमारे मन में ऐसी छवियां व ख्यालात छिपे होते हैं जिन्हें हम सचेतन रूप से जानते ही नहीं। फिर भी यह ख्यालात सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को गहरे रूप से प्रभावित करते हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया में यह छवियां मन में बनती हैं और अक्सर इनका सत्ता के ढांचों से नजदीकी सम्बंध होता है।हमने कुछ ऐसे लोगों को ढूंढा जिन्होंने प्राथमिक शाला के शिक्षकों व बच्चों के साथ लम्बे समय तक काम किया है। हमने इन लोगों से आग्रह किया कि वह इन मुद्दों पर अपने विचार हमें बताएं। इन लोगों में रोहित धनकर (दिगन्तर खेल कूद शिक्षा समिति जयपुर) एच.के.दीवान (विद्या भवन, उदयपुर) अंजली नरोन्हा (एकलव्य, भोपाल) मिनती पाण्डा (एन.सी.ई.आर.टी., दिल्ली), महेन्द्र मिश्रा (डी.पी.ई.पी., भुवनेश्वर) और दीपा दास (एडसिल, दिल्ली) शामिल हैं। हम इन सभी प्राथमिक शिक्षा के दार्शनिकों/विचारकों के आभारी हैं कि इन्होंने समय लगाया और अपने विचारों को औरों तक पहुंचाने के प्रयास में मदद की। पहले तकनीकी अनुसमर्थन समूह (TSG) में हमने (विपाशा और शेषगिरि) इन सब लोगों के विचारों को संकलित करने का प्रयास किया और फिर प्रोफैसर आर.के. अग्नीहोत्री, (दिल्ली वि.वि.) ने इन्हें एक लेख के रूप में बांध कर प्रस्तुत किया है।

जिन्दगी में वास्तव में शायद कोई भूत नहीं होते। परन्तु दिमाग के भूत जरूर होते हैं और यह भूत बिल्कुल वास्तविक होते है। यह भूत हमारी मानसिकता और हमारे मन में छिपी पुरानी मान्यताओं से ग्रसित व उन्हीं में जड़ हुई छवियों से मिलकर बनते है। यह सब जिन्दगी के हर पहलु में हमारे व्यवहार को प्रभावित करते हैं। शिक्षा पर भी इनका बहुत प्रभाव है।

किसी भी सीखने-सिखाने की परिस्थिति में मनोवशति की बड़ी भूमिका है। यह तय है कि क्या सीखा जाएगा वह इस बात पर बहुत कुछ निर्भर करेगा कि समाज का शिक्षकों के प्रति क्या दशष्किोण अथवा रवैया है और शिक्षक बच्चों के बारे में क्या सोचते व मानते हैं। हमारे मन में एक आदर्श शिक्षक की क्या छवि है? हम किसे एक आदर्श छात्रा/छात्र मानते है? आदर्श माता-पिता किस तरह के होने चाहिए ? आजकल के छात्र-छात्राओं, माता-पिता व शिक्षकों के बारे हमारे मन में क्या छवि है? अच्छे शिक्षक के बारे में मानते हैं कि वह एक ऐसा व्यक्ति है जो सब कुछ जानता है, जिसकी जरूरतें बहुत कम हैं और जिसके पास एक जादुई छड़ी है जो छात्र-छात्राओं को कामयाब व काबिल पढ़े-लिखों में बदल देगी। बच्चे की जो छवि हमारे मन में है वह कुछ इस प्रकार की है, सामान्य बच्चा पहले से कुछ नहीं जानता, उसका दिमाग एक खाली स्लेट के समान है और वह नकल करने से व अभ्यास से ही सब कुछ सीखता है। इसमें से कुछ भी सच नहीं है।

शिक्षक बाकी सब इन्सानों की तरह ही हैं। बच्चे बहुत सा ज्ञान व समझ लेकर स्कूल आते हैं। लेकिन हमारे मन के यह भूत बिल्कुल वास्तविक हैं और हमारे सीखने-सिखाने के कार्यक्रमों पर गहरा असर डालते हैं।

यद्यपि हम इन मनोवशत्तियों व छवियों के असर का सीखने-सिखाने के हर पहलू पर अहसास करते हैं, फिर भी इनका विश्लेषण करना व इन्हें समझना सरल नही है। हम अलग-अलग क्षेत्रों में लोगों के व्यवहार का अवलोकन कर सकते हैं व उसका विश्लेषण कर सकते हैं परन्तु हम उनकी मनोवृति न देख सकते है, न छू सकते है और न ही माप सकते हैं। हम सिर्फ व्यवहार देखकर उनके बारे में कुछ निष्कर्ष निकाल सकते है और यह कई बार गलत भी हो सकते हैं। मनोवृत्तियां आखिर मन का मामला है, यह हमारे मन के सबसे भीतर के दबड़ों (कोनों) में रहती है। जब हम किसी से उसकी मनोवृत्तियों व मान्याताओं के बारे में पूछते हैं, तब हम पक्के तौर पर कभी नहीं कह सकते हैं कि

वह व्यक्ति जो वह मानती है वही बता रही है या वह कह रही है जो उसे लगता है कि आप व बाकि समाज अपेक्षा करता है।यह कहना भी बहुत मुश्किल है कि मनोवृत्तियों का हमारी सामाजिक व राजनैतिक जिन्दगी पर क्या असर पड़ता है। इसमें शक नही कि मानसिक दृष्टिकोण व सामाजिक संदर्भों में एक निरन्तर व बदलने वाली सक्रिय क्रिया होती है। पर यह भी सम्भव है कि हमारी मनोवृति मुख्य रूप से सामाजीकरण की जड़ प्रक्रिया से ही निर्धारित हो।

आखिरकार मनोवृत्तियां व जड़ धारणाएं सामाजिक यथार्थ को समझने के हमारे प्रयास का ही आईना है। दुर्भाग्यवश यह प्रक्रिया समाज में सत्ता के ढांचों से जुड़ी है। सत्ता में रहने वाले लोग अकसर गरीब लोगों के किसी खास सच्चे या झूठे पहलु की ही बात करते है, और एक ऐसी जड़ धारणा बना लेते है जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है।

शिक्षक को 'आसपास के क्षेत्र में एक मात्र पढ़े लिखे' के रूप में पहचानी जा सकती है और उसे जनगणना या फिर चुनाव के संचालन के लिए लगाया जा सकता है : उसे जनकल्याण के बहुत से और कार्यो, जैसे कि बैंक ऋण बांटना, साक्षरता की मुहिमों, पशुगणना, मद्यान्य का भोजन, पल्स पोलियो, अनुसूचित जाति/जनजाति की गणना आदि में भाग लेने को कहा जा सकता है।

उदाहरण के लिए एक अमीर आदमी, एक ऐसे गरीब बच्चे को देखता है जो साफ नहीं है, और यहीं से इस जड़ धारणा के बनने की शुरूआत हो सकती है : गरीब बच्चे गंदे होते हैं, चुस्त व होशियार नहीं होते, उनका व्यवहार व आदतें खराब होती हैं आदि। अगर आप पढ़ाना शुरू करने से पहले ही यह मानते हैं कि एक नीची जाति का बच्चा/बच्ची सीख नहीं सकता तो आप उसे कभी भी सीखा नहीं पाएंगे।

एक बार बनने के बाद धीरे-धीरे मनोवृत्तियां कम से कम तीन पहलु अख्तियार कर लेती हैं। यह पहलु हैं :- कुछ मान्यताएं, एक संवेदनात्मक हिस्सा और कर्म । हर सकारात्मक अथवा नकारात्मक मनोवृति के पीछे एक जड़ धारणा होती है, एक छवि होती है। यह छवि गैर-तार्किक ही होती है। उसकी जड़ तर्क में बिल्कुल नहीं होती। आप अपनी मनोवृति तभी बदलना शुरू कर सकते हैं जब आप अपने मन में छिपी छवि पर प्रश्न पूछें। उदाहरण के लिए यह पूछें कि क्या यह वास्तव में सही है कि बच्चे बगैर कुछ सीखें स्कूल आते हैं या फिर यह पूछें कि क्या ऐसा सचमुच सही है कि लड़के लड़कियों से गणित में बेहतर होते हैं। जब आप अपने मन की किसी धारणा पर सवाल उठाने शुरू करेंगे, तभी उस मनोवृति से आपका भावनात्मक लगाव कम होगा : आपकी मनोवृति में परिवर्तन होगा, वह ज्यादा तार्किक बनेगी और आपका व्यवहार उसी के अनुसार बदलेगा। अगर आप वास्तव में बराबरी, स्वतंत्रता व इंसाफ को मानते हैं तो आपको जल्दी पता चल जाएगा कि आपके मन में बहुत से भूत हैं जो इन मूल्यों के खिलाफ हैं। आपके मन के यह भूत जितने गहरे में बैठे हैं उतनी ही उंची वह दीवारें हैं जो आपको दूसरों की बात सुनने से रोकती है।

इस विषय पर विचार लिख कर भेजने वाले सभी साथियों का मानना है कि शिक्षक उन परस्पर विरोधी छवियों के बीच फंसे हैं जो उनके बारे में प्रचलित हैं। स्कूली शिक्षा की

भयावह वास्तविकता और उनके प्रति हमारी निंदनीय गैर संवेदनशीलता यकीनन परिस्थिति को और भी जटिल बना देती है। शिक्षक की परम्परागत छवि, विशेषतौर से भारत में, आदर्शवादिता से बुरी तरह ग्रसित है, शिक्षक माँ और भगवान के लगभग समकक्ष है। उससे अपेक्षा है कि वह त्याग, सादगी व आराम की वस्तुओं के बिना संयम का जीवन गुजारे और उसका जीवन में एक ही लक्ष्य होना चाहिए - ज्ञान को लगातार खोजते रहना व उसे दूसरों तक पहुंचाना। यह अकसर भुला दिया जाता है कि शिक्षक भी एक सामान्य इन्सान है, जिसकी सामान्य व्यक्तिगत इच्छाएं व सामाजिक जरूरतें है, अगर उसकी बुनियादी आवश्यकताओं को भुला दिया जाएगा तो उसको अपने कर्तव्यों का निर्वाह करना मुश्किल होगा। शिक्षक के बारे में जो दूसरी छवि है वह इससे ठीक उलटी है। इस छवि को मानने वाले व्यक्ति सोचते है कि शिक्षक एक आलसी व अनुपयोगी व्यक्ति है जिसे कुछ न करने के लिए वेतन के रूप में मोटी रकम दी जाती है । वे ये भी मानते है कि शिक्षकों को लम्बी छुट्टियां मिलती है। जैसा दीवान ने लिखा है, ऐसे व्यक्तियों को ढूंढना मुश्किल नहीं जो अलग-अलग संदर्भो में शिक्षकों के प्रति इन बिल्कुल विपरीत मतों को व्यक्त करते है।

प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों को जो हम दे पाते है और उनसे हम जो अपेक्षा करते है उसमें एक बहुत बड़ी खाई है। स्कूलों के शिक्षकों को बहुत अच्छा वेतन नहीं मिलता, उन्हें अपनी क्षमता का विकास करने पर कोई भत्ता नहीं मिलता और उनके पास किताबें और पत्रिकाएं खरीदने के लिए भी कोई प्रावधान नहीं है। उनके काम करने की परिस्थितियां बहुत ही खराब है। कई बार जिन शालाओं में वे काम करते है उनमें कोई भी कमरा नहीं होता, थोड़ी बेहतर शालाओं में एक या दो कमरे पांच कक्षाओं के लिए होंगे। ऐसा बहुत ही कम होगा कि किसी

प्राथमिक शाला में पांच शिक्षक हों जो कि पढ़ाई हो पाने के लिए न्यूनतम आवश्यक संख्या है। ऐसे भी विरले ही स्कूल होंगे जिनमें श्याम पट्ट, चॉक, डस्टर, नक्शे, पीने का पानी, खेल का मैदान, संडास आदि हों। और इस सब पर यह भी है कि प्राथमिक शाला के शिक्षक को रोज के पढ़ाने के अलावा और भी बहुत सी भूमिकाएं निभानी हैं। वह 'आसपास के क्षेत्र में एक मात्र पढ़े लिखे' के रूप में पहचानी जा सकती है और उसे जनगणना या फिर चुनाव के संचालन के लिए लगाया जा सकता है : उसे जनकल्याण के बहुत से और कार्यों, जैसे कि बैंक ऋण बांटना, साक्षरता की मुहिमों, पशुगणना, मद्यान्य का भोजन, पल्स पोलियो, अनुसूचित जाति/जनजाति की गणना आदि में भाग लेने को कहा जा सकता है। भई, आखिर शिक्षक को लम्बी छुट्टी भी तो मिलती है। उसका अचानक तबादला भी किया जा सकता है और अधिकारियों द्वारा उसे लगातार परेशान किया जा सकता है और नीचा दिखाया जा सकता है। और इन शोचनीय परिस्थितियों में हम शिक्षकों से अपेक्षा करते हैं कि वे प्रेरणा के स्त्रोत हों, जिम्मेदार कार्यकर्त्ता हों, सोचने-विचारने वाले हों और सृजन करने वाले हों। हम यह भी चाहते हैं कि वे कक्षा में नवाचार करें। जैसा कि आपने देखा ही होगा शिक्षकों के बारे में हमारी धारणाएं इन सब बातों को नजर अंदाज करके बनी हैं। अगर हम

यह सच है कि हर बच्चा आईन्सटाइन नहीं होता और न ही वह तेंदुलकर होता है, पर क्या आईन्सटाइन और तेन्दुलकर में से कोई भी वैसी अच्छी रोटी बना सकता है जैसी की गांव वाली बारह साल की कोई भी लड़की बना सकती है! सभी सामान्य इन्सानी बच्चे सीखने की अपार क्षमता लेकर पैदा होते हैं, और उचित अवसर व प्रेरणा मिलने पर वे कुछ भी सीख सकते हैं।

शिक्षक व्यवस्था के बारे में वास्तविक रूप में कुछ सोचना चाहते हैं तो हमें इन भूतों पर सवाल उठाने होंगे। जैसा दीवान ने कहा है :

हम शिक्षकों से अपेक्षा करते हैं कि वे बच्चों के घर जाएं और उनसे व उनके माता-पिता से मिलकर सुनिश्चित करें कि बच्चे नियमित रूप से स्कूल आएं। हम अपेक्षा करते हैं कि वे नीति-निर्देशों में निर्धारित मॉडलों के अनुरूप पढ़ाएं, राज्य व जिला स्तर पर बनी पाठ योजनाओं के अनुसार ही श्याम पट्ट पर लिखें और नियमित रूप से बच्चों का गृहकार्य जांचें। उनसे यह भी अपेक्षा है कि वे सुनिश्चित करें कि बहुत ही अलग-अलग भाषायी व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आने वाले यह बच्चे उसी पाठ्यक्रम व उसी पाठ्य सामग्री को उसी गति से उतने ही समय में सीख लें। उनसे यह भी अपेक्षा है कि पिछली कक्षा में बच्चे ने जो नहीं सीखा है, उसके सीखाने की भी गुंजाइश हो। वे बच्चों को रोचक, सृजनात्मक व नई तरह की गतिविधियों में शामिल कर पाएं, समय-समय पर नियमित रूप से उन्हें परिभ्रमणों का भी आयोजन करवा पाना चाहिए। उनसे यह भी अपेक्षा है कि वे हर पल बच्चों को एक हंसमुख चेहरा प्रस्तुत करें व उनके साथ खुशनुमा व्यवहार करते ही रहें। और यह सब किसे करना है! उस अकेले शिक्षक को जो एक नहीं दो-दो या तीन-तीन कक्षाओं को 'देख' रही है।

जैसा कि रोहित ने इंगित किया है, इस परिस्थिति के चलते, यह आश्चर्य कि बात नहीं कि प्राथमिक शाला के शिक्षक समाज में व कक्षा में अपनी भूमिका को लेकर पूर्णत: भ्रमित है। इन्होंने कहा कि शिक्षक एक गंभीर द्वंद में फंसे है - उंचे आदर्श से पूर्ण उनके उन विश्वासों, जिनमें वे खुद को कुछ देने वाला और निर्माण करने वाला समझते है और वास्तविक यथार्थ, जिसमें वह इन आदर्शों के आस-पास फटकने वाला भी कोई कार्य नहीं कर पाते। उनके भ्रमित होने का एक कारण उनकी अधूरी तैयारी भी है। भ्रम और खालीपन की इस दशा का अवश्यम्भावी अंजाम होता है एक कठोर अनुशासन थोपने वाले और 'मै सब जानता हूं' के दुश्चक्र में फंसे व्यक्तित्व का विकास।

ये शिक्षक मानने लगते है कि :

(क) सामान्यत: बच्चे कुछ नहीं जानते ;

(ख) शिक्षक सब कुछ जानता है ;

(ग) शिक्षक ज्ञान देने वाला और बच्चा ज्ञान लेने वाला है ;

(घ) बच्चे सीख पाएं इसके लिए कक्षा में सुव्यवस्था व अनुशासन होना चाहिए ;

(च) बहुत प्यार देने से बच्चे बिगड़ जाते हैं; और

(छ) साफ रहने व आज्ञा मानने से सीखना सुनिश्चित हो जाता है।

इसी तरह के भूतों से उन भ्रमों को बल मिलता है जिनके अनुसार बच्चे का दिमाग एक खाली स्लेट है, जिस पर पके-पकाए ज्ञान के अंशों से बने नये संदेश लिखे जा सकते है। ज्ञान को एक लगातार समृद्ध हो रही गतिशील प्रक्रिया के रूप में नहीं देखा जाता। शिक्षक इसमें बड़ा गर्व महसूस करते है कि बीस-तीस साल के पढ़ाने में उन्होंने पढ़ाने की सामग्री और तरीके को बिल्कुल नहीं बदला है। हम कोई ऐसे तरीके नहीं सोचते और कोई ऐसे ढांचे नहीं बनाते जिनसे नया ज्ञान व शिक्षा के सैद्धांतिक व व्यवहारिक क्षेत्रों में हो रहे शोध की मुख्य-मुख्य खोजें हमारे शिक्षकों तक पहुंच सकें। असल में, धनकर ने ठीक ही कहा है, मनोवृत्तियों का आधार सिर्फ भावनात्मक नहीं है। ये मनोवृत्तियां तो हमारी तार्किक समझ, बच्चों के प्रति हमारी संवेदनशीलता और उनके साथ एक सार्थक व सृजनशील सम्बन्ध बना पाने की क्षमता पर निर्भर करती है। सीखने की प्रक्रिया के बारे में जितनी अधिक स्पष्टता हम अख्तियार कर लेंगे, उतनी ही अधिक सम्भावना है कि हमारा दिमाग गैर-तार्किक भूतों से मुक्त रहेगा।

एक और बात जिस पर हममें से अधिकांश लोग और शिक्षक भी विश्वास करते है, कुछ बच्चे अन्य बच्चों की अपेक्षा ज्यादा दिमाग वाले होते है। यह बात

ऐसा बहुत ही कम होगा कि किसी प्राथमिक शाला में पांच शिक्षक हो-जो कि पढ़ाई हो पाने के लिए न्यूनतम आवश्यक संख्या है। ऐसे भी कम ही स्कूल होंगे जिनमें श्याम पट्ट, चॉक, डस्टर, नक्शे, पीने का पानी, खेल का मैदान, संडास आदि हों।

हमें इतनी स्वाभाविक लगती है कि हम इस संभावना पर विचार ही नहीं करते और इस तरफ ध्यान ही नहीं देते कि अलग-अलग बच्चों का दिमाग लगभग तुल्य क्षमता का हो सकता है और फर्क उनके दिमागों के रूझान के अलग- अलग कार्य क्षेत्रों में होने का है। चूंकि हम सभी बच्चों को एक ही मापदण्ड से मापना चाहते हैं इसलिए हम सृजनात्मक व्यवहार में विविधता का सम्मान नहीं कर पाते। हम इस बात का भी आदर नहीं कर पाते कि अलग-अलग बच्चे अलग-अलग क्षेत्रों में महारत हासिल करते है और उनके सीखने की प्रक्रिया भी अलग-अलग होती है। यह सच है कि हर बच्चा आईन्सटाइन नहीं होता और न ही वह तेंदुलकर होता है, पर क्या आईन्सटाइन और तेन्दुलकर में से कोई भी वैसी अच्छी रोटी बना सकता है जैसी की गांव वाली बारह साल की कोई भी लड़की बना सकती है! सभी सामान्य इन्सानी बच्चे सीखने की अपार क्षमता लेकर पैदा होते हैं, और उचित अवसर व प्रेरणा मिलने पर वे कुछ भी सीख सकते हैं। आखिर हर सामान्य इन्सानी बच्चा चार साल की उम्र तक एक बहुत ही जटिल भाषायी ढांचे पर दक्ष नियंत्रण हासिल कर लेता है। इन बातों को समझने के लिए और इनका महत्व पहचानने के लिए शिक्षकों को आपस में बातचीत करने की जरूरत है, इनके बारे में पढ़ने की जरूरत है, सोचने की जरूरत है और इन मुद्दों पर लिखने की जरूरत है। जैसा कि अंजली नरोन्हा लिखती हैं, एकलव्य ने इस तरह सोचने के मौकों व चर्चाओं को शिक्षक प्रशिक्षण की व्यूह-रचना में एक महत्वपूर्ण हिस्से की तरह शामिल किया है। अंजली के अनुसार, वे शिक्षक जो इस तरह की प्रक्रिया से गुजरते हैं, बच्चों को आदर, जिम्मेदारी व स्वतंत्रता देने लग जाते हैं और ऐसा करने पर बच्चों की सीखने की प्रक्रिया में बढ़ी हुई भागीदारी को देखकर अकसर आश्चर्य करने लगते हैं। एक बार शिक्षक अपनी जड़-धारणाओं व अपने गैर-तार्किक झुकावों का परीक्षण करना शुरू कर देते हैं तो फिर वह उनसे स्वतंत्र होने के तरीके भी ढूंढने लगते हैं। इस तरह की बहस हमेशा शिक्षकों की एक छोटी संख्या के बीच शुरू होती है और फिर धीरे-धीरे ज्यादा बड़े दायरे में फैल जाती है, जहाँ यह चर्चाएं ज्यादा शिक्षकों के बीच होती है और

जिसमें शिक्षक व बच्चों के सम्बंध के नए-नए आयाम को कुरेदा जाता है। इस तरह की चर्चाएं बहुत जरूरी है और इन्हें हमारे शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आवश्यक हिस्सा बनाना चाहिए।

यह भी आवश्यक है कि शिक्षक नियमित रूप से महान विचारकों को पढ़ें और उनके विचारों पर चर्चा करें। छोटे-छोटे लिखित अंशों का सामूहिक अनुवाद भी हमारे मन के भूतों पर सवाल उठाने की प्रक्रिया को शुरू कर सकता है।

इस सन्दर्भ में लिखकर भेजने वाले हमारे सभी साथियों ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि शिक्षकों व बच्चों के प्रति धारणाओं को सामान्य सामाजिक ढांचे से अलग-थलग रख के नहीं देखा जा सकता। एक ऐसे समाज में जो विभिन्नताओं के स्तरों में व्यवस्थित हो यह स्वभाविक ही है कि शिक्षा विशेष उच्च के लिए ही होगी। यही वह एकमात्र तरीका है जिससे की समाज में अलग-अलग स्तरों का बना रहना सुनिश्चित किया जा सकता है। यदि एक प्रजातांत्रिक सरकार सभी को शिक्षा देने का वायदा भी कर दे तो भी जो शिक्षा कमजोर वर्ग के लोगों को मिलेगी वह अमीर लोगों को मिलने वाली शिक्षा से गुणात्मक रूप से फर्क होगी। जितनी पिछड़ी और कमजोर किसी बच्चे की पृष्ठभूमि होगी उतना ही सामाजिक रवैया उसके खिलाफ होगा। इसका मतलब ये है कि वे बच्चे जो सबसे खराब जड़-धारणाओं के शिकार है, वे इन श्रेणियों के होंगे : नीची जाति वाले, लड़कियां, आदिवासी, अल्पसंख्यक आदि। सभी लेख भेजने वालों ने इस तरह की नकारात्मक जड़-धारणाओं के उदाहरण दिए है:-

(क) मुसलमानों के बच्चे बदमाश होते है : एक दो साल डोलेंगे और नगीने में चले जाऐंगे, इन्हें मै ज्ञान नहीं दे पाऊंगा। यह नगीने वालों के बच्चे है, नगीने घिसेंगे, कहाँ वकील बन जाएंगे -- (रोहित धनकर)

(ख) 'साहब, इस गाँव के सभी बच्चे आदिवासी हैं, ये कौंध हैं। इनकी शिक्षा में कोई रूचि नहीं। साहब इन सबको तो शराब की लत है। इनके माँ-बाप भी पढ़े लिखे नहीं है, वे शिक्षा की कीमत नहीं समझते। अपने बच्चों को वे खेतों और जंगल में काम करने के लिए भेज देते हैं। ये बच्चे लकड़ी और तेंदु पत्ते आदि इकट्ठा करके लाते हैं। कक्षा में यह बच्चे बिल्कुल निष्क्रीय होते हैं। इनकी कोई भाषा या संस्कृति नहीं होती। ये तो अनार्य है।' (महेन्द्र मिश्र)

सीखने की प्रक्रिया के बारे में जितनी अधिक स्पष्टता हम अख्तियार कर लेंगे, उतनी ही अधिक सम्भावना है कि हमारा दिमाग गैर-तार्किक भूतों से मुक्त रहेगा।

जैसा अब तक आप समझ गए होगें, मनोवृत्तियाँ और जड़-धारणाओं की कोई तर्क संगत बुनियाद नहीं होती। इनको पोषण और प्रेरणा उन्हीं मान्यताओं से मिलती है, जिनकी आवश्यकता अभी के सामाजिक ढांचे को है, अपने आपको बनाए रखने के लिए। चूंकि यह धारणाएं गैर-तार्किक होती हैं, इसलिए इनके साथ बहुत पक्की संवेदनाएं व भावनाएं जुड़ जाती हैं। जब भी किसी जड़-धारणा से सम्बंधित पात्र सामने होता है,

(ग) 'आदिवासी बच्चे काफी बेवकूफ होते हैं, वे सरल सवाल भी हल नहीं कर पाते, न ही वे विज्ञान समझ पाते हैं। विज्ञान तो केवल शहरी क्षेत्रों में दिखती है, गांव में तो कोई विज्ञान नहीं है।' (मिनती पाण्डा)

(घ) 'ये बेचारे गरीब बच्चे कुछ नहीं कर पाते', 'तुम्हारे बाप दादा पढ़े हैं कभी जो तुम पढ़ोगे।' (अंजली नरोन्हा)

(च) गांव के स्कूलों में लड़के और लड़कियां अकसर अलग-अलग पंक्तियों में बैठते हैं। कक्षा की पूरी प्रक्रिया लड़कों की ओर केन्द्रित होती है, लड़कियों को हमेशा नजर अंदाज किया जाता है। शिक्षा उनके लिए नहीं है, उन्हें तो शर्मीली और बुद्धू माना जाता है। (एच.के.दीवान व दीपा दास)

(छ) ज्यादातर लोग मानते हैं कि अगर लड़कियां पढ़-लिख लेगीं तो वह लड़कों के साथ भाग जाएंगी और परिवार का नाम बदनाम करेंगी। लड़के और लड़कियों की भूमिका के बारे में शिक्षक कई पूर्व-धारणाओं से ग्रसित होते हैं। लड़की को जो भूमिका वह अदा करते देखते हैं, उनका पढ़ने-लिखने से कोई सम्बन्ध नहीं। उसे एक घरेलू स्त्री, बच्चों की देखभाल करने वाली माँ, भाईयों की देखभाल करने वाली बहन, रसोई में अपनी माँ की मदद करती बेटी, अपने पति की देखभाल कर रही पत्नी आदि रूपों में ही देखा जाता है। लड़की कितना अच्छा सीख पाती है, यह प्रश्न शिक्षा के हमारे ढांचे के केन्द्र में तो बिल्कुल ही नहीं है। हम यह बात भूल जाते है कि यदि हम लड़कियों की शिक्षा को नजर अंदाज करते रहे तो हमारी आधी जनसंख्या अशिक्षित रह जाएगी (दीपा दास)

जैसा अब तक आप समझ गए होगें, मनोवृत्तियाँ और जड़-धारणाओं की कोई तर्क संगत बुनियाद नहीं होती। इनको पोषण और प्रेरणा उन्हीं मान्याताओं से मिलती है, जिनकी आवश्यकता अभी के सामाजिक ढांचे को है, अपने आपको बनाए रखने के लिए। चूंकि यह धारणाएं गैर-तार्किक होती है, इसलिए इनके साथ बहुत पक्की संवेदनाएं व भावनाएं जुड़ जाती है। जब भी किसी जड़-धारणा से सम्बंधित पात्र सामने होता है, तो उससे सम्बंधित व्यवहार अपने आप प्रकट हो जाता है। और यदि उस व्यवहार का कहीं से भी कुछ प्रतिरोध हुआ तो जैसे कोई गुस्से का ज्वालामुखी फूटा हो ऐसी प्रतिक्रिया होती है। लेकिन हमने यह भी देखा है कि अगर लोगों को अपनी धारणाओं व विचारों के बारे में तार्किक ढंग से सोचने व चर्चा करने के लिए प्रेरित करें व उसके लिए उपयुक्त माहौल बना पाएं तो लोग अपनी जड़ धारणाओं को उखाड़ने-पछाड़ने के तरीके ढूंढने लग जाते हैं। हमे समाज में ऐसा स्थान बनाने की आवश्यकता है जहाँ प्राथमिक शिक्षा के बारे में पूर्ण पुन: विचार हो सके। अगर हम शिक्षकों को और उन स्कूलों को जहाँ वे पढ़ा रहे है बुनियादी सुविधाएं दे पाएं और शिक्षकों के ऊपर लादा हुआ गैर-शैक्षिक कार्यो का बोझ हटा पाएं, तो इससे जो जगह बनेगी उसे हथिया कर शायद शिक्षा व बच्चों के बारे में अपनी मान्यताओं की जांच करना शुरू कर दें। इसी तरह इस समाज के सभी पढ़े - लिखें लोगों का विशेष दायित्व है कि वे शिक्षकों की भूमिका व उनके हालात पर गहराई से विचार करें। निश्चय ही यह प्रक्रिया हमारे समाज में शिक्षा के चेहरे को बदलने की राह में एक बड़ा कदम होगी।

इस लेख के लिए चित्र ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित प्रोब (PROBE) रिपोर्ट से लिए गए है।

यह ईंटें खिलौना नहीं है

इस बार हम आपके लिए कामकाजी बच्चों के बारे में एक लेख प्रस्तुत कर रहे हैं जो 4 मई, 98 को टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित हुआ था। यह लेख महाराष्ट्र में ईंटं भट्टों पर काम करने वाले बच्चों की दशा पर रोशनी डालता हैं।

12 वर्षीय आशा गायकवाड हर साल पूर्व महाराष्ट्र में बसे अपने गांव से अपने परिवार के साथ मुम्बई के भवन निर्माण स्थलों पर आती है। जब उसके माँ-बाप भवन निर्माण का काम करते हैं तब वह खाना बनाती है और अपने दो छोटे-छोटे भाईयों की देखभाल करती है। कभी-कभी, वह मिट्टी उठाने या सीमेंट मिलाने में अपनी माँ की सहायता भी करती है।

राष्ट्रीय भवन निर्माण प्रबंधन और अनुसंधान संस्थान की एक रिपोर्ट कहती है कि खेती के बाद भवन निर्माण भारत की दूसरी सबसे बड़ी आर्थिक गतिविधि है। महाराष्ट्र में सर्वाधिक मज़दूर बांध, पुल, सड़कें, कारखाने, अस्पताल, घर और दूसरे निर्माण स्थलों और साथ ही निर्माण से संबंधित अन्य उद्योगों जैसे ईंटों की भट्ठियों और पत्थर की खुदाई में काम करते हैं।

इतना बड़ा क्षेत्र होने पर भी व्यवसाय का अधिकतर हिस्सा अत्यन्त शोषित मज़दूरों, जिसमें बालश्रम भी शामिल है, पर आश्रित है। वैजयन्ता आनन्द जो कि निर्मला निकेतन सोशल वर्क महाविद्यालय के निर्माण मज़दूरों से सम्बंधित प्रौजेक्ट में काम करती है बताती है कि मुम्बई में अधिकतर भवन-निर्माण मज़दूर प्रवासी है, एक जगह से दूसरी जगह घूमते रह कर दिहाड़ी पर काम करते है और बरसात के मौसम में वापस घर चले जाते है।

ये मज़दूर ठेकेदारों, जिन्हें जमादार कहते है के द्वारा काम पर लगाए जाते है। ये जमादार एक जोड़ी (युगल) को कार्य-स्थल पर कई काम करने का एक साथ ठेका दे देते है। चूंकि, सारे परिवार कार्य-स्थल पर चले आते है इसलिए प्राय: छ: साल की उम्र तक के छोटे बच्चे भी निर्माण से जुड़े छोटे-मोटे कामों में लग जाते है। थाणा जिला में ईंटों की कुछ भट्ठियों ने तो बहुत से बच्चों को परोक्ष रूप से काम पर लगा ही रखा है। क्षेत्र की एक स्वंय सेवी संस्था, विधायक संसद के आंकलन के अनुसार थाणा जिले से ही कम से कम 40,000 आदिवासी परिवार जिसमें 25,000 बाल मजदूर हैं भट्ठियों पर काम करने के लिए प्रवास करते है।

बिलोशी गांव की 10 वर्षीय शर्मिला गावित भी एक ऐसी ही प्रवासी मज़दूर है। यह इस क्षेत्र के सबसे गरीब जातियों में से एक जाति, कटकरी से है। इसके परिवार के पास कोई जमीन नहीं है और यह परिवार छ: महीने भट्ठियों में बिताता है और छ: महीने बिलोशी में जहाँ ये चावल के खेतों में काम करते है। उसके पिता कनू बताते है "हम ऐसा कई दशकों से करते आ रहे है।" शर्मिला रोज़ाना अपनी घास और सरकंडों से बना झोपड़ी में पानी भरती है, खाना पकाती है और कपड़े व बर्तन धोती है। ईट बनाने की प्रक्रिया में भी वह किन्ही हिस्सों में समय-समय पर काम करती है : मिश्रण बनाना, उसे साँचे में डालना, थपथपा कर सांचे में जमाना, ईटों को पकने के लिए उठाकर ले जाना।

हरेक आधी गीली ईट का वजन करीब दो किलो होता है, और शर्मिला दिन में कई बार 12 ईटों तक एक साथ उठाती है। मिश्रण, सुबह होने से पहले और शाम होने के बाद सबसे अच्छा बनता है, इसलिए परिवार के लोग सुबह दो बजे उठते है और रात को 9 बजे तक काम करते है।

पुणे के बाहरी हिस्सों में स्थित ऐसी कई

और भट्टियाँ, भवन निर्माण सामग्री के सर्वदा भूखे बाज़ार को ईटें पहुंचाती है। 13 वर्षीय कौशल्या इंगले सिन्हागढ़ रोड की भट्टी पर तब से आ रही है जब वह एक छोटी बच्ची थी। बरसात के मौसम में यह परिवार निर्माण स्थल पर चला जाता है। **"मैं काले कोयले की ख़ाक छानती हूँ और एक बार में 12-16 ईटे उठा लेती हूँ," वह बताती है, "अगर मेरा सर और पैर बहुत ज्यादा दु:खने लगते है, तो मै थोड़ी देर के लिए बैठ जाती हूँ और मेरी माँ काम करने लगती है।"**

इस सारे कठिन परिश्रम के बदले में इन परिवारों को बहुत कम पैसा मिलता है। एक भरे ट्रक जितनी छनी ख़ाक से कौशल्या के माँ-बाप को 70 रूपए मिलते है। हर बार 1000 ईटे उठाने पर कौशल्या को 16 रूपए मिलते हैं। वास्तव में यह पैसा उसके माँ-बाप को दिया जाता है, क्योंकि, मज़दूर के रूप में कौशल्या का नाम किसी भी रिकार्ड में दर्ज नहीं है। मुम्बई में भवन-निर्माण स्थलों पर औरतें प्रतिदिन 40 से 60 रूपये कमाती हैं।

थाणे में, 1000 ईटे बनाने पर मजदूरों को 80 से 120 रूपए मिलते है। 1500 से 2000 ईटें बनाने में चार सदस्य वाले परिवार को एक पूरा दिन लग जाता है। भट्ठी पर एक मौसम में, करीब 50 दिन काम चलता है। मौसम के अन्त में जब पैसे दिए जाते है तभी काम की दरें निश्चित होती है। भट्ठियों और भवन निर्माण स्थल पर काम करने वाले परिवारों को अग्रिम राशि, जिसे

निर्माण स्थल पर काम करने वाले मज़दूरों के लिए, कम से कम 29 कानून लागू है। परन्तु इनमें से किसी का भी पालन नहीं होता। बालश्रम (निषेध और नियंत्रण) कानून 1986 ने निर्माण कार्य को जोखिमी बताया है, परन्तु उसने ईटों के भट्ठों को छोड़ दिया है।

खर्ची कहा जाता है, हर सप्ताह दी जाती है। सारा हिसाब किताब मौखिक रूप से ही रखा जाता है और ठेकेदार अक्सर मज़दूरों के साथ धोखा करते है।

भट्ठियों में काम करने वाले बाल श्रमिकों को पर्याप्त पोषण नहीं मिलता। क्योंकि ये प्रवासी है, इसलिए ये अपने गांव के राशन के कोटे से भी वंचित रहते है। भट्ठियों के पास बाज़ार से ये लोग निम्न-स्तर का अनाज मंहगे दाम पर खरीदते है। भट्ठियों के आस-पास का पानी पीने योग्य नहीं होता। निर्माण द्वारा भवन निर्माण का काम कर रही 106 महिला मजदूरों पर किया गया अध्ययन बताता है कि ये सभी महिलाएँ खराब प्रजनन स्वास्थ्य से पीड़ित है। फिर भी कम उम्र में लड़कियों की शादी होना आम बात है।

विद्यायक संसद की एक रिर्पोट बताती है, "ईटों की भट्ठियों में बच्चे प्रतिदिन 10 से 14 घंटे काम करते है। वे कोयले का चूरा छानते है, आग के पास काम करते है और घुटनों तक की मिट्टी में घंटों खड़े रह कर ईटों का आटा तैयार करने के लिए उस मिट्टी को पैरों से रोंदते रहते है। इन बच्चों को सभी तरह की मुश्किलों का सामना करना पड़ता है और ये त्वचा, पेट, फेफड़ों, कुपोषण और थकावट से उपजी बीमारियों से पीड़ित रहते है!

पुणे की एक गैर-सरकारी संस्था, इंडिया स्पॉन्सरशिप कमेटी (ISC) की सुनीता पवार बताती है "क्योंकि ईट बनाने की सारी क्रियाएँ आपस में सम्बन्धित है। इसलिए, अगर एक बच्चा नहीं आता है तो उसके बदले किसी दूसरे बच्चे का मौजूद होना जरूरी है। इसलिए, बीमार बच्चे भी तब तक काम करते रहते है जब तक वे बहुत ही ज्यादा बीमार न हो जाएं।"

शर्मिला बताती है ''मेरी गर्दन, सर और पीठ दर्द करती है। काम करते वक्त मुझे चक्कर आते हैं और मेरे घुटने कांपते हैं।'' कौशल्या ईंगले बताती है ''मुझे हर समय बुखार और जुकाम रहता है।'' कई बार बच्चों से ईंटें गिर जाती हैं और वे जख्मी हो जाते है। क्योंकि भट्ठियों में कोई चिकित्सा सुविधा नहीं है, इसलिए वे घरेलु नुस्खों पर ही आश्रित रहते है, या दवाखाना जाने के लिए पैसे उधार लेते है।

विधायक संसद की पारोमिता गोस्वामी बताती है कि थाणे जिले में भट्ठियों में लड़कियों और औरतों का उत्पीड़न कोई असामान्य बात नहीं है। उन्होंने यह भी कहा ''परन्तु ऐसे हादसों की रिपोर्ट नहीं की जाती क्योंकि कानून उत्पीड़न करने वाले अपराधियों का ही साथ देगा।''

एक और नुकसान इन बच्चों की शिक्षा को होता है। कौशल्या ईंगले कभी भी स्कूल नहीं गई क्योंकि उसे एक जगह से दूसरे जगह घूमना पड़ता है। आशा गायकवाड़ भी कभी स्कूल नहीं गई। और शर्मिला गावित ने कक्षा 4 की परीक्षा देने के बाद अभी- अभी पढ़ाई छोड़ दी है। ''मै पढ़ना चाहती हूँ'' वह कहती है ''परन्तु बिलोशी मे छः महीने तक घर पर कोई भी नही रहता, तो मै कैसे घर पर रूक सकती हूँ ?''

निर्माण स्थल पर काम करने वाले मज़दूरों के लिए, कम से कम 29 कानून लागू हैं। परन्तु इनमें से किसी का भी पालन नहीं होता। बालश्रम (निषेध और नियंत्रण) कानून 1986 ने निर्माण कार्य को जोखिमी बताया है, परन्तु उसने ईंटों के भट्ठों को छोड़ दिया है।

ऐसी स्थितियों में कुछ गैर सरकारी संस्थाएँ हस्तक्षेप कर रही हैं। सिन्हागढ़ की भट्ठियों में, पुणे की I.S.C. अनौपचारिक शिक्षा की कक्षाएँ चला रही है। विधायक संसद, भट्ठियों के पास 1100 बच्चों के लिए 11 अनौपचारिक विद्यालय चला रहा है। ये स्कूल लचीले समय में नियमित स्कूलों के पाठ्यक्रम पढ़ाते हैं और बच्चों से परीक्षाएँ दिलवाते हैं। संसद ने राज्य सरकार के सामने कुछ अन्य कल्याण कार्यो का प्रस्ताव भी रखा है : चलती-फिरती राशन की दुकानें, टीकाकरण योजना, न्यूनतम वेतन दरों में संशोधन, बिजली और पानी की सुविधाएँ।

परन्तु ऐसे सभी सुधारों के लिए प्रतिबद्धता की जरूरत होती है। शर्मिला का पिता कनु बताता है ''हमें क्या मिलता है चाहे कोई भी दल सत्ता में हो? उन्हें ही फायदा होता है, हमें नहीं।'' उसकी माँ चन्गुना ने बताया, ''हमारी जिन्दगी ऐसे ही चलती रहनी है। मेरी बेटी का इससे अच्छे दिन देख पाना संभव नहीं लगता।''

यह छह लेखों की श्रंखला में से चौथा लेख है। शर्मिला जोशी बम्बई में महिलाओं की एक फीचर सेवा की विशेष पत्रकार है।

चित्र आर्कोदता द्वारा बनाए गए हैं। ये चित्र मद्रास शहर में बालश्रम पर इण्डियन ऐक्सप्रैस की रिर्पोटों के संग्रह 'लॉस्ट चाइल्डहुड' से लिए गए हैं।

तोते का शिक्षण

यह कहानी, 'रविन्द्रनाथ टैगोर - पायनियर इन ऐजूकेशन' नामक पुस्तक से ली गई है जिसमें टैगोर और एल. के. ऐल्मर्स्ट के बीच लेखों और विचारों का आदान-प्रदान है। (इस किताब का वितरण 50 एल्बेमार्ले स्ट्रीट, लन्दन के जॉन मुमय द्वारा हुआ)

एल.के.ऐल्मर्स्ट की मुलाकात टैगोर से सन् 1921 में हुई और फिर बाद में वह कलकत्ता में टैगोर के साथ आ गए, इन्होंने श्रीनिकेतन नाम के एक ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्यक्रम की शुरूआत की। उन्होंने टैगोर के साथ अनेकों स्थानों का भ्रमण भी किया। ऐल्मर्स्ट का कहना है, ''टैगोर के बचपन में अध्यापकों द्वारा उन पर की गई ज्यादतियों और औपचारिक कक्षाओं में उनके कटु अनुभव शिक्षण पर उनके लेखन के नियमित विषय रहे हैं। उन्होंने शिक्षा पर अपने कटु अनुभवों को आधार बना कर एक कल्पनाशील वक्तव्य निबन्ध अग्रेंजी में लिखा, और उसे कलकत्ता में एक दस्तावेज के रूप में छपवाया। व्यंग्यात्मक चित्रों द्वारा उनके कलाकार भतीजों अरविन्द नाथ और गजेन्द्रनाथ टैगोर ने वक्तव्य को उभारा है। उपरलिखित किताब में यही लेख दुबारा छापा गया है।

एक समय की बात है, एक अज्ञानी पक्षी था। वह गाता तो ठीक था, परन्तु कभी भी धार्मिक ग्रन्थों की बातें नहीं बोलता था। वह उछलता कूदता रहता था, परन्तु उसमें उपयुक्त व्यवहार की समझ नहीं थी।

राजा ने सोचा ''यह अज्ञानता आगे चलकर महंगी पड़ेगी। क्योंकि मूर्ख अपने से अच्छों के बराबर खाना तो खाते है, परन्तु फिर भी बदले में कुछ नहीं देते।''

उसने अपने भतीजों को बुलवाया और उन्हें कहा कि इस पक्षी को अच्छी शिक्षा दी जानी चाहिए। पंडितों को बुलाया गया और जल्द ही वे मामले की तह तक पहुँच गए। उन्होंने यह फरमाया कि पक्षियों में खराब से घोसलों में रहने की प्राकृतिक आदत होती है, इसलिए वे कुछ भी नहीं जानते। अत: पंडितों के अनुसार पक्षी को शिक्षित करने के लिए पहली जरूरी चीज़ है, एक उपयुक्त पिंजरा।

पंडित अपना-अपना ईनाम लेकर खुशी-खुशी अपने घर को चलते बने।

एक खूबसूरत सजा हुआ सोने का पिजंरा बनाया गया। दुनिया के कोने-कोने से लोग उसे देखने आए। हर्षोन्मत्त होकर कुछ लोगों ने कहा, 'संस्कृति बन्दी बना पिंजरे में रख दी!' और रोने ही लगे। दूसरे लोगों ने कहा 'अगर संस्कृति नही भी रही, तो भी यह पिंजरा रहेगा, हमेशा के लिए एक ठोस सत्य की तरह रहेगा। कितना भाग्यशाली है यह पक्षी!' सुनार ने अपना झोला पैसों से भरा और बिना समय नष्ट किए घर को रवाना हो गया।

पंडित पक्षी को पढ़ाने के लिए बैठा। एक चुटकी नसवार अपने दोनों हाथों के बीच पीसता हुआ वह सोच-सोच कर बोला, ''हमारे काम के लिए कितनी भी पोथियाँ हो कम ही है।''

भतीजों ने बहुत से पोथी लिखने वालों को इकट्ठा किया। उन्होंने किताबों से नकल की, कापियों से नकल की और वे तब तक लिखते रहे जब तक पोथियों का ढेर पहुंच से बाहर तक की ऊँचाई तक पहुँच गया। लोग आश्चर्यचकित होकर धीरे-धीरे बोल रहे थे। 'अरे! संस्कृति की ईमारत, कितनी ऊँची, इसकी चोटी मानो बादलों में खो गई हो!'

लिखने वाले हलके मन से भरी हुई जेबों के साथ खुशी-खुशी घर लौट गए।

भतीजे पिंजरे को ठीक से रखने में अत्यन्त व्यस्त थे। उस पिंजरे की निरन्तर रगड़ाई और पॉलिश के चलते लोगों ने संतोषपूर्वक कहा : ''वास्तव में, प्रगति तो यही है!''

बहुत से लोगों को, और इनसे भी अधिक निरीक्षणकर्त्ताओं को काम पर लगाया गया। भतीजों ने अपने दूर-दराज़ के भाईयों के साथ मिलकर अपने लिए एक महल बनवाया और उसमें खुशी से रहने लगे।

और कितनी ही खामियाँ हो संसार में, इसमें नुक्स निकालने वालों की कमी नहीं रही है और बहुत से आलोचक यह कहते घूमने लगे कि जो बन्द पिंजरे से दूर-दूर का भी सम्बन्ध रखता था, वह अत्यन्त फला-फूला, समृद्ध हुआ, सिवाय पक्षी के।

राजा के कानों तक जब यह बात पहुँची तो उसने अपने भतीजों को बुलवाया और पूछा : 'मेरे प्यारे भतीजो, यह मैं क्या सुन रहा हूँ?'

भतीजों ने उत्तर दिया : 'राजन्, यदि आप सच्चाई जानना चाहते हैं तो सुनार और पण्डितों से, लिखने वालों और निरीक्षणकर्त्ताओं से पूछ सकते हैं। इन आलोचकों को सुखों का अभाव है। इसीलिए उनकी जुबान तीखी हो गई है।

भतीजों द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण इतना स्पष्ट व संतोषप्रद था कि राजा ने उन सभी भतीजों को खुद के नायाब आभूषणों से सजा दिया।

आखिरकार एक दिन राजा शिक्षा के श्रेष्ठ कक्ष में अपनी आखों से यह देखने के लिए पहुंचा कि उसका शिक्षा विभाग छोटे से पक्षी के साथ किस प्रकार व्यस्त है।

द्वार पर से शंखों, घंटियों, तरही, बिगुल, मंजीरों, ढोल, नगाड़ों, घंटों, ढोलकी, बांसुरी, बाजों, मशकों की आवाजें आने लगी।

पण्डित अपने सबसे ऊंचे स्तर में मन्त्रोच्चारण करने लगे और सुनार, लिखने वाले,

भतीजों ने बहुत से पोथी लिखने वालों को इकट्ठा किया। उन्होंने किताबों से नकल की, कापियों से नकल की और वे तब तक लिखते रहे जब तक पोथियों का ढेर पहुंच से बाहर तक की ऊँचाई तक पहुँच गया। लोग आश्चर्यचकित होकर धीरे-धीरे बोल रहे थे। 'अरे! संस्कृति की ईमारत, कितनी ऊँची, इसकी चोटी मानो बादलों में खो गई हो!'

निरीक्षणकर्त्ता और उनके दूर-दराज के असंख्य भाई-बन्धु जोर-जोर से वाहवाही करने लगे।

भतीजों ने मुस्कुराकर कहा : 'राजन्, आपका इस सबके बारे में क्या सोचना है?' राजा बोला, ''यह बहुत कुछ शिक्षा के एक ठोस सिद्धांत की तरह लग रहा है!''

अत्यधिक प्रसन्न राजा जैसे ही अपने हाथी पर सवार होने लगा वैसे ही एक आलोचक पीछे झाड़ियों से चिल्लाया : 'महाराज, क्या आपने पक्षी को देखा है?' 'वाकई, मैंने नहीं देखा।' राजा बोला, 'मैं पक्षी के बारे में बिल्कुल भूल ही गया।'

वापस मुड़कर राजा ने पण्डितों से पूछा कि उन्होंने पक्षी को कैसे पढ़ाया। राजा को वह तरीका दिखाया गया। वह बहुत प्रभावित हुआ। वह इतना आडम्बरमय तरीका था कि उसके सामने पक्षी गैर-महत्वपूर्ण लगता था। राजा को संतोष हो गया कि व्यवस्था में कहीं कोई कमी नहीं है। और पक्षी कोई शिकायत कर सके, ऐसा तो सम्भव ही नहीं था। उसका गला किताब के पन्नों से इस कदर ठुंसा था कि नत्तो वह सीटी बजा

लौहार ने अपनी छेनी और हथौड़े के साथ राजा के शिक्षा विभाग में जगह ले ली। ओह, क्या गूंजती हुई ध्वनि है! क्या ठोका-पीटा जा रहा है! जल्दी ही लोहे की जंजीर तैयार हो गई और पक्षी के पंख कतर दिए गए।

सकता था और न ही कुछ फुसफुसा सकता था। इस प्रक्रिया को देखकर शरीर में उत्साह की एक लहर सी दौड़ती थी।

इस बार राजा ने हाथी पर सवार होते हुए, अपने राज्य में दण्ड देने वालों को आज्ञा दी कि आलोचना करने वाले के दोनों कान ज़ोर से खीचें जाएँ।

पक्षी धीरे-धीरे और ठीक तरीके से बेकार होने के कगार पर पहुँच गया। असल में इस चरम सीमा तक पहुंचने का उसका तरीका बहुत ही संतोषजनक रहा। फिर भी कभी-कभी उसकी प्राकृतिक प्रवृत्तियां प्रशिक्षण पर हावी हो जाती और जब सुबह का उजाला पक्षी के पिंजरे में आता, तब वह फटकार पाने लायक ढ़ंग से फड़फड़ाने का गुनाह कर बैठता। हालांकि इस बात पर विश्वास करना कठिन है, किन्तु उस दयनीय हालत में वह पिंजरे की सलाखों को अपनी कमजोर होती चोंच से मारता था।

क्या गुस्ताख़ी है! कोतवाल ज़ोर से चिल्लाता।

लौहार ने अपनी छेनी और हथौड़े के साथ राजा के शिक्षा विभाग में जगह ले ली। ओह, क्या गूंजती हुई ध्वनि है! क्या ठोका-पीटा जा रहा है! जल्दी ही लोहे की जंजीर तैयार हो गई और पक्षी के पंख कतर दिए गए।

राजा के साले बहुत दु:खी होकर गुस्से से अपना सर पीट कर बोले, 'ये पक्षी न केवल नासमझ होते है, बल्कि कृतघ्न भी होते है।'

एक हाथ में किताब और दूसरे में बेंत लेकर पण्डितों ने बेचारे पक्षी को वह दिया जिसे सही माने में सबक कहा जा सकता है।

कोतवाल को उसकी चौकसी और लौहार को जंजीर बनाने की कला के लिए सम्मानित किया गया।

वह पक्षी मर गया।

कोई यह भी नहीं जानता कि यह सब कितनी देर पहले हुआ। यह अफवाह फैलाने वाला सबसे पहला आदमी आलोचक था।

राजा ने अपने भतीजों को बुलाकर पूछा, मेरे प्यारे भतीजों, यह मै क्या सुन रहा हूँ?' भतीजे बोले : राजन्, 'पक्षी की शिक्षा पूरी हो गई है।'

''क्या वह कूदता-फांदता है?'' राजा ने पूछा।

'कभी नहीं।' भतीजों ने कहा।

'क्या वह उड़ता है ?'

'नहीं'

'पक्षी को मेरे पास लेकर आओ,' राजा ने कहा।

पक्षी को कोतवाल, सिपाहियों और सवारों की सुरक्षा में राजा के पास लाया गया। राजा ने अंगुली से पक्षी के शरीर को दबाया। सिर्फ उसके अन्दर भरे हुए किताब के पन्नों की खरखराहट हुई।

खिड़की के बाहर, बसंत की हवा मंद ध्वनि से नई कलिकाओं वाली अशोक की पत्तियों में चलते हुए अप्रैल की सुबह को हलका सा उदास बना रही थीं।

यह कहानी हिन्दी में भारत ज्ञान विज्ञान समिति, पश्चिम ब्लॉक 2, विंग 6, आर.के. पुरम, सेक्टर I, नई दिल्ली - 110066 द्वारा भी प्रकाशित की गई है।

कक्षा के अन्दर

यह उद्धरण प्राथमिक शिक्षा पर सार्वजनिक रिपोर्ट प्रोब (PROBE) से है। यह रिपोर्ट विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित शोधकर्त्ताओं द्वारा मिलजुल कर तैयार की गई है। इसका आधार सितम्बर से दिसम्बर, 1996 के बीच, गहराई से किया एक विस्तृत सर्वेक्षण है। इस सर्वेक्षण में सभी उपलब्ध स्कूली सुविधाओं का अवलोकन किया गया व बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश के यादृच्छिक रूप से चयन किए गए 234 गांव के 1376 घर सैम्पल के रूप में लिए गए।

यह उद्धरण हमारे देश के एक प्राथमिक विद्यालय की कक्षा में होने वाली गतिविधियों पर प्रकाश डालता है और वर्तमान में इस्तेमाल किए जाने वाली शिक्षण पद्धति, पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यक्रम की भूमिका पर भी रोशनी डालता है और उनमें मूलरूप से बदलाव की मांग करता है। इसमें उस दृष्टिकोण, मनोवृति और सोच के बारे में भी बताया गया है जिसे लेकर सामान्य तौर पर अध्यापक कक्षा में आता है।

बच्चों का अध्यापक की बात न समझ पानें का बोझ

मध्य दिल्ली में सरकारी अफ़सरों की रिहायशी के एक प्रतिष्ठित इलाके में नगरपालिका द्वारा संचालित एक प्राथमिक विद्यालय। एक सुप्रतिपालित इमारत, जो उन अफसरों की हैसियत पर रोशनी डालती है जिनके नौकरों के बच्चे इस स्कूल में पढ़ते हैं। लम्बी चौड़ी कक्षाएँ, बड़ी-बड़ी कांच की खिड़कियां जिसमें से सूरज की रोशनी आती है और बच्चों के बैठने के लिए साफ सुथरी टाट-पट्टियां। कक्षा 3 में 'हवा' पर पाठ पढ़ाया जा रहा था। अध्यापक ने एक के बाद एक 'विज्ञान सम्बन्धी' कुछ तथ्य यान्त्रिक रूप से बोले, लगभग सब ठीक वैसे ही दोहराये जैसे किताब में लिखा हुआ था। ऐसा लगा मानो एक ही सांस में हवा के सारे 'लक्षण' और 'गुण' बाहर आ गए हों।

वायु सभी जगह विद्यमान है

वायु स्थान घेरती है

वायु का अपना कोई आकार नहीं

वायु कई गैसों का मिश्रण है

गैस पदार्थ की एक अवस्था है

8 से 9 साल की उम्र तक के बच्चे इन मंत्रों को मिल कर दोहरा रहे थे। अगर वे चाहते तब भी वे इन गूढ़ बातों का कोई अर्थ नहीं निकाल पाते।

शिक्षक की इज्जत करते हुए, भक्ति के साथ बच्चे शिक्षक के (जो स्वंय किताब में लिखी बातों के अनुसार चल रहा था) एक-एक शब्द को ब्रह्म वाक्य मानकर ऐसे दोहरा रहे थे कि मानों उन पर इनका जादू छाया हो। हमने उनसे दोस्ती के लहजे में बात करने की कोशिश की "तुमने अभी-अभी सुना, कि 'हवा सभी जगह विद्यमान है, यानि हवा सभी जगह होती है। क्या ऐसा होता है? क्या तुम्हारे बस्ते में भी हवा है?" ज्यादातर बच्चों ने दृढ़ता से मना कर दिया, जैसे उन्हें अपने बस्ते में पड़ी चीजों के बारे में जानकारी पर पूरा विश्वास हो। फिर भी कुछ उत्सुक और उद्यमी बच्चों

ने बड़ी मासूमियत से अपने स्कूल के बस्तों में झांककर देखा कि क्या वास्तव में कोई अनजान चीज़ उनके बस्ते में उन्हें बिना पता लगे चली गई है।

दिल्ली में नगर पालिका द्वारा संचालित विद्यालय का यह उदाहरण बताता है कि एक शहरी और सब सुविधाओं वाले कक्षा कक्ष में भी किस प्रकार सामान्य तौर पर बच्चे न समझ पाने का बोझ ढोते हैं। 'हवा' पर यह पाठ देश के अधिकतर स्कूलों में तकरीबन ऐसे ही पढ़ाया जाएगा। यही सिद्धान्त दोहराए जाएँगे और इन्हीं मन्त्रों का उच्चारण होगा, बगैर इस बात की चिन्ता किए की एक छोटा बच्चा क्या समझ सकता है और क्या नहीं। बच्चों पर किए विभिन्न अध्ययन यह बताते हैं कि 12 वर्ष तक की उम्र के बच्चे भी इस औपचारिक सिद्धान्त कि ''हवा सभी जगह विद्यमान है'', को स्वीकारने में बहुत दिक्कत करते हैं। वे आमतौर पर हवा को गति, बहाव या पवन के बहने के साथ जोड़ते हैं, और उनके लिए यह विश्वास करना कठिन है कि एक बन्द डिब्बे या पिचके हुए टायर में भी हवा होती है। एक लड़की ने तो यह तक कहा कि वह 'हाथ में डिब्बा लिए बाहर हवा की तरफ भागेगी जिससे डिब्बे में हवा भर जाए।' फिर भी हमारे स्कूल तो बिना रूके, बड़े आदर और विश्वास के साथ उपदेश देते रहेंगे कि 'हवा सभी जगह है,' ठीक उसी तर्ज पर जैसे यह उपदेश दिए जाते हैं कि 'भगवान सब जगह है।' जिस तरह बाद वाली बात को परखने की कोई जरूरत नहीं, यह सोचा भी नहीं जा सकता कि इस पर कोई सवाल पूछ सकता है और जिस पर भरोसे की अपेक्षा है, उसी तरह पहले वाली बात भी विश्वासपूर्वक, बिना किसी तर्क या प्रश्नचिन्ह के माने जाने का हक जताती है।

ये मन्त्र हमेशा छोटे और गूढ़ नहीं रहने वाले, धीरे-धीरे ये ज्यादा प्रभावशाली, ज्यादा लम्बे और बोलने में कठिन होते जाएंगे, और फिर इनका उच्चारण तक भी ज्यादातर बच्चे (और काफी अध्यापक भी) नहीं कर पाएंगे। विडम्बना तो यह है कि मध्यप्रदेश के अनौपचारिक स्कूलों में कक्षा 3 की किताब (बाल पोथी, SCERT, भोपाल, 1990) जो कि उन बच्चों के लिए है जो औपचारिक स्कूल नहीं जा पाते, और भी संक्षिप्त है और ऐसे ही बोलने में भी कठिन वाक्यों से पूर्ण है। चूंकि अनौपचारिक स्कूलों से यह अपेक्षा है कि उनमें बच्चे दो घंटे प्रतिदिन में और सामान्य प्राथमिक शाला में लगे वर्षो से कम वर्षो में उतने ही पाठ्यक्रम से 'गुजरेंगे', इसलिए जानकारी का ठूसाव पाठ्यक्रम योजना के सभी तार्किक मापदण्डों को तोड़ता है।

फिर भी हमारे स्कूल तो बिना रूके, बड़े आदर और विश्वास के साथ उपदेश देते रहेंगे कि 'हवा सभी जगह है,' ठीक उसी तर्क पर जैसे यह उपदेश दिए जाते हैं कि 'भगवान सब जगह हैं।'

उदाहरण के लिए, ''मौसम'' पर अध्याय विभिन्न मुद्दों का संग्रह है, जैसे वर्षा, बादलों का बनना, वाष्पीकरण, ओस, जल चक्र, बर्फ बनना, हवाएँ, मौसम का पूर्वानुमान आदि। आश्चर्य की बात है कि इसमें सूक्ष्मदर्शी में से बनाया गया (बगैर बताए कि चित्र में क्या दिखाया गया है) बर्फ के कतरे का एक ऐसा चित्र है जो रवें के समान दिखता है। आमतौर पर यह चित्र बड़ी कक्षा के छात्रों के लिए रवें बनने की प्रक्रिया के पाठ में दिखाया जाता है। दो 'प्रयोग', जिनका परम्परा के अनुरूप विधिवत वर्णन है, में कहा गया है कि, 'बराबर आकार और आकृति वाली धातु की दो प्लेटें' और 'कुछ बर्फ और पानी, काँच के एक साफ जार में लो।' यह बात बिना यह परवाह किए हुए की जाती है कि ये चीजें वास्तव में अनौपचारिक केन्द्रों, या फिर औपचारिक स्कूलों तक में

भी उपलब्ध होती है या नहीं। वास्तव में, गाँव के कितने स्कूलों के पास 'काँच के साफ जार में बर्फ' उपलब्ध हो सकती है ?

'बराबर आकार और आकृति वाली धातु की प्लेटें (हिन्दी में लिखा एक घना वाक्य) जैसी गूढ़ परिभाषाओं का प्रयोग छोटे बच्चों के साथ करना अर्थहीन है, इससे किताबें रहस्यमयी और बिना मतलब 'अति-वैज्ञानिक' लगती है। यही चीज़ आसान से शब्दों का इस्तेमाल करके भी कही जा सकती है, जैसे 'स्टील या पीतल के ढक्कन जो एक ही जैसे हों' या सिर्फ 'थालियाँ'। सच्चाई तो यह है कि पाठ्यपुस्तकें वहाँ पर भी जानबूझ कर कठिन भाषा का इस्तेमाल करती है जहाँ पर आसान शब्द लिखे जा सकते है। जैसा कि, 'जमीन के पास' या 'पानी की भाप' कहने की बजाए किताबें (और पीछे-पीछे अध्यापक भी) 'भूमि के निकट' या 'जल वाष्प' जैसे शब्दों का सहारा लेते है। इसी तरह, 'मौसम' पर पाठ हवा, वाष्प और दूसरी 'अस्पष्ट' बातों के बारे में नीचे दिए उदाहरणों जैसी गूढ़ बातों के द्वारा प्रवचन देता है -

कभी-कभी पानी की वाष्प भूमि के निकट ही बादल बनाती है। इस प्रकार के बादलों को कोहरा कहते हैं। जब पानी की वाष्प भूमि के निकट ठोस पदार्थों के छोटे-छोटे कणों पर द्रव बन जाती है तो कोहरा पैदा होता है।

अंतिम वाक्य न केवल कक्षा 3 का बच्चा बल्कि कक्षा 8 का बच्चा भी नहीं समझ सकता! पानी की वाष्प, संघनन, ठोस पदार्थो के छोटे-छोटे कण, कोहरे का बनना जैसी अमूर्त अवधारणों को एक ही वाक्य में 'बता' दिया गया है। ऊपर से यह भाषा बच्चों के लिए आपराधिक हद तक गैर संवेदनशील है और प्राकृतिक अभिव्यक्ति और समझ के खिलाफ है। कम से कम वाक्यों में ज्यादा से ज्यादा जानकारी देना और बच्चों को जानकारी से भरपूर कैपस्यूल समान गोली का निशाना बनाने की प्रवृति पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें बनाने में आम बात है। *जैसा कि लर्निंग विदाउट बर्डन (बिना बोझ के सीखना) किताब बताती है :*

हमारी किताबें बच्चे के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर नहीं लिखी जाती। न तो उनमें बच्चों से बातचीत का नजरिया, न दर्शाई गई वस्तुओं का चयन, न ही उनकी भाषा, (स्कूल द्वारा बनाए गए) संसार में बच्चों की अहमियत को प्रदर्शित करते हैं। इनमें बच्चों द्वारा आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले शब्द, अभिव्यक्तियाँ और भाव नहीं होतें एक बनावटीपन होता है जो ज्ञान को जिन्दगी से दूर करने की परम्परा को और दृढ़ करता है। पुस्तकों में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा स्कूल से संबंधित सभी ज्ञान की बातों में 'बोझ' के अहसास को गहरा करती है।

जीवन की वास्तविकताओं से दूर

अब हम मध्य प्रदेश के एक काफी दूरवर्ती गांव के सामान्य स्कूल के बारे में बात करेंगे, जहाँ पाँचों कक्षाओं के लिए केवल दो ही अध्यापक हैं। इस इलाके में एक आम सरकारी विद्यालय की हालत शोचनीय हैं, जहाँ हर उम्र के बच्चे खचा-खच भरे है और वे ऊबड़-खाबड़ व नंगे फर्श पर सटे हुए निष्क्रिय मुद्राओं में बैठे है। इस स्कूल से आने वाली आवाजें बेसुरे आलाप की तरह होती है, ऐसा लगता है मानों इन मंत्रों का पूरी ताकत से चिल्ला-चिल्ला कर उच्चारण करने में बच्चे अपनी बोरियत को बहाकर उससे मुक्ति पाते है। किसी चालू कक्षा में शायद ही स्वाभाविक खुशी व्यक्त करने की कोई आवाजें हों - हंसी खुशी की, सृजनात्मक रचना की, सक्रिय भागीदारी की, मज़ेदार खोज की, जिज्ञासा से उपजे सवालों की, संगीत या काव्य की आवाजें सुनाई ही नहीं देतीं। क्या अभी भी

"शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान हमारे स्कूलों की वास्तविकता के बारे में हमें कुछ नहीं बताया जाता। मैं पढ़ाने के जितने भी तरीके जानता था वे सब इन बच्चों के साथ असफल हो चुके हैं। एक ही तरीका जो काम कर सकता है वह बिना सोचे समझे तड़ातड़ मारना है।"

अध्यापक मज़े से अपना व्यक्तिगत काम बच्चों से करवा रहे थे, जैसे पानी मंगवाना, पास की दुकान से सिगरेट या पान लाना।

आश्चर्य है कि ऐसे स्कूल और इनके अन्दर का माहौल ज्यादा सीखने नहीं देता?

1-3 कक्षाओं के सभी बच्चे बरांदे में ठसा-ठस भरे है और बाकी दो कक्षाएँ एक अंधेरे और मनहूस से कमरे में बैठी है। अध्यापक काम के प्रति गम्भीर लगते हुए भी चार से दस साल की उम्र के बच्चों के इस विशाल विविधता से भरपूर समूह की थानेदारी ही मुश्किल से कर पा रहा है। 'पढ़ाने' के नाम पर वह पूरी तरह पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर है, कभी तो वह उन्हें ज़ोर से पढ़ देता है और कभी बच्चों को उनमें से नकल करने को कहता है। तीन कक्षाओं को एक साथ न संभाल पाने के कारण और काम करने की प्रतिकूल स्थितियों से निराश होकर वह कम से कम काम करने का सिद्धांत अपना लेता है।

हमारी शिक्षा प्रणाली में 'शिक्षण' का अभिप्राय घटकर मात्र 'सूचना देना' रह गया है और अध्यापक ऐसा ही करने पर बाध्य होता है। आमतौर पर पढ़ाना कुछ ही क्रियाओं तक सीमित होकर रह गया है या जैसे बच्चों से स्वंय पढ़ने को कहना, एक बच्चे से जोर-जोर से पढ़वाना, कभी-कभी बोर्ड पर कुछ शब्द लिख देना या किताब में दिए गए प्रश्नों के 'सही' उत्तर बोलकर लिखवाना। अध्यापकों को भी उनके अच्छे से अच्छे अध्यापकों द्वारा इसी विधि से पढ़ाया गया और वे समझते है कि उनसे भी ऐसे ही पढ़ाने की अपेक्षा की जाती है। इस माहौल में किताब (या पाठ्यक्रम) 'बाइबल' है और इनमें बन्द ज्ञान ही मूल रूप से कक्षा की गतिविधियों का आधार है।अकसर अध्यापक पढ़ाने में ज्यादा मेहनत नहीं करना चाहते, परन्तु पाठ्यपुस्तकें भी कुछ और गतिविधि करने को प्रोत्साहन नहीं देतीं, वे पाठ्यपुस्तकें भी नहीं जो गतिविधि केन्द्रित होने का दावा करती है। उदाहरण के लिए, बच्चों को किसी चीज़ की तस्वीर को देखने को कहा जाता है, न कि बाहर जाकर वास्तव में उस चीज़ को देखने को, चाहे वह चीज़ एक साधारण सी गौरैया हो या पौधे का पत्ता ही हो।

कक्षा कक्ष में सामाजिक वर्ग

वर्गो में बंटे समाज के वर्ग भेद को बच्चे कक्षा कक्ष में आत्मसात करते है। इस 'वर्ग भेद के निर्माण' का मूल स्त्रोत अध्यापक ही है। इसमें पाठ्यक्रम भी मदद करता है। मज़दूर वर्ग के अनुभवों को नकार कर और उन सिद्धांतों और आदर्शो को पूजकर जो मज़दूरों के बच्चों की दुनिया में है ही नही, अध्यापक और पाठ्यक्रम दोनों ने ही बच्चों को स्कूल द्वारा परिचित संसार में अजनबी सा बना दिया है। यह दिल्ली के निकट तुगलगाबाद में मज़दूर वर्ग के बच्चों के लिए चल रहे विद्यालय की गतिविधियों के विस्तृत अध्ययन से उभरी एक बात है। इन स्कूल में ज्यादातर बच्चे इसी इलाके की पत्थर की खदान में काम करने वाले परिवारों के है।आइये पहले हम अध्यापकों की भूमिका को देखते है। इस स्कूल के बारह स्थायी अध्यापकों में से कोई भी छोटी जाति का नहीं था। जो अध्यापक साधारण आर्थिक पृष्ठभूमि से थे वे भी शिक्षक बनने के बाद अपने आपको उस स्तर का नहीं समझते थे। सभी अध्यापकों ने अपने छात्रों के घरों की समस्याओं, घरेलू मार-पीट, शराब की लत, माताओं का निरक्षर होना, माता-पिता की बच्चों की पढ़ाई लिखाई के प्रति विरक्ति आदि की लगातार शिकायतें की।

अध्यापकों ने घर के वातावरण को तो दोषी ठहराया परन्तु पढ़ाने वाले के रूप में अपनी कोई भी जिम्मेदारी नहीं मानी। कुछ शिक्षक तो काम के प्रति विरक्ति महसूस करते है और कुछ उससे कटा-कटा महसूस करते है। ''शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान हमारे स्कूलों की वास्तविकता के बारे में हमें कुछ नही बताया जाता। मै पढ़ाने के जितने भी तरीके जानता था वे सब इन बच्चों के साथ असफल हो चुके है। एक ही तरीका जो काम कर सकता है वह बिना सोचे समझे तड़ातड़ मारना है।'' जब उन अध्यापक से इस प्रकार मारने की विधि के असर को विस्तार से बताने के लिए कहा गया तो उन्होंने माना कि पीटने से बच्चों के सीखने में तो कुछ फायदा नहीं हुआ, लेकिन इस से बच्चे उसे अपना खुद का काम करते वक्त परेशान नही करते थे। एक दूसरा अध्यापक

मानता है कि जब अभिभावकों में सफाई और किताबों को ध्यान से रखने की कोई तहजीब ही नहीं है, तो मुफ्त पोशाकें और किताबें देना बेकार है। इस नौजवान अध्यापक को यह भी लगता है कि इन बौडम अभिभावकों के बच्चों से बात करना असंभव है। ''इन बच्चों को पढ़ाने से कोई फर्क नहीं पड़ता'' एक अन्य अध्यापक ने लम्बी सांस लेते हुए कहा, ''मै अपने छात्रों को दो घंटे से ज्यादा नहीं पढ़ाता। मेरे खुद के कई और भी काम धंधे हैं।

अध्यापक मज़े से अपना व्यक्तिगत काम बच्चों से करवा रहे थे, जैसे पानी मंगवाना, पास की दुकान से सिगरेट या पान लाना। यह मान ही लिया गया था कि ये तुच्छ मजदूरों के बच्चे हैं, और इन्हें घर और स्कूल में ऐसे ही काम करने होते हैं। अध्यापक न पढ़ाने के लिए किसी भी भटकाव का हमेशा स्वागत करते हैं। जब बच्चे फेल हो जाते तब वे इस असफलता के पीछे बच्चों की अयोग्यता मानते और समाज व पाठ्यक्रम की अक्षमताओं को कुछ नहीं कहते। यह 'पीड़ित पर ही दोष' लगाने का बढ़िया उदाहरण है।

पाठ्यक्रम की बात करें तो इसमें शामिल सामग्री भी थोपी गई अर्थहीन संस्कृति से परिपूर्ण है। शहद की मक्खियों और पशु जगत के अन्य ऐसे जीवों आदि के उदाहरण लेकर बड़ों और छोटों के बीच की खाई को इन पुस्तकों में स्वाभाविक बना दिया है। मैडम क्यूरी ऐल्बर्ट श्वेट्ज़र, गौतम बुद्ध, कन्फ्यूशियस आदि की जीवनियाँ बुद्धि जीवियों को श्रम जीवियों से बेहतर बताती हैं। बेहतर से बेहतर हो तो ये जीवनियां मज़दूरी करने के लिए पैदा और बड़े हुए बच्चों में आदर और भय पैदा करती हैं, और बुरा से बुरा असर मानें तो ये उन लोगों में अयोग्यता की भावना पैदा करती है। किताबों में लिखी कहानियाँ दिमागी शक्ति के महत्व पर जोर डालती हैं जिसके असीम जादू से एक कंगाल भी राजा बन सकता है। पाठ्यक्रम समाज के सर्वोच्च लोगों के चिन्हों का इस्तेमाल करता है और दूसरे अन्य चिन्हों की उपेक्षा करता है - जो ज्ञान इन किताबों में परोसा गया है वह सभी के लिए महत्वपूर्ण बताया गया है। आज के हालात की तारीफ करके या उनके आदर्श रूप को प्रस्तुत करके काफी बार श्रमजीवी वर्ग की वास्तविक परिस्थितियों का गैर-राजनीतिकरण किया है व उन्हें स्वाभाविक बताया है। इस प्रकार कुल मिलाकर यह पाठ्यक्रम बच्चों पर एक सुव्यवस्थित सांस्कृतिक हमला है, उन्हें समाज में अपना निचला दर्जा आत्मसत करने पर मजबूर करने के लिए उन्होंने जो निरूत्साह महसूस किया वह स्वाभाविक था।

पाठ्यपुस्तकें वास्तविक जीवन के अन्त:विरोधों से अनभिज्ञ है। छोटे बच्चों के लिए चिड़ियाघर के जानवरों पर एक पाठ है। यहाँ जानवरों के पास साफ सुथरा रहने का स्थान है और वे बीमारियों और विटामिनों की कमी से बचे हुए हैं। बीमार जानवरों के लिए संवेदनशील अस्पताल के डॉक्टर हैं। चिड़ियाघर की ये सुविधाएँ पत्थर की खानों के हालातों के एकदम विपरीत हैं। अध्यापकों को पुस्तकों में लिखी सामग्री और उनके संदर्भ के बीच की खाई का जरा भी अहसास नहीं था।

फिर भी यह बताना उचित है कि अध्यापक और पाठ्यपुस्तक कक्षा को रचने के थियेटर के मात्र कलाकार है। कक्षा रचने का पूरा नाटक तो कक्षा से बाहर के वर्ग संबंधों द्वारा ही लिखा जाता है।

अध्यापकों को पुस्तकों में लिखी सामग्री और उनके संदर्भ के बीच की खाई का जरा भी अहसास नहीं था।

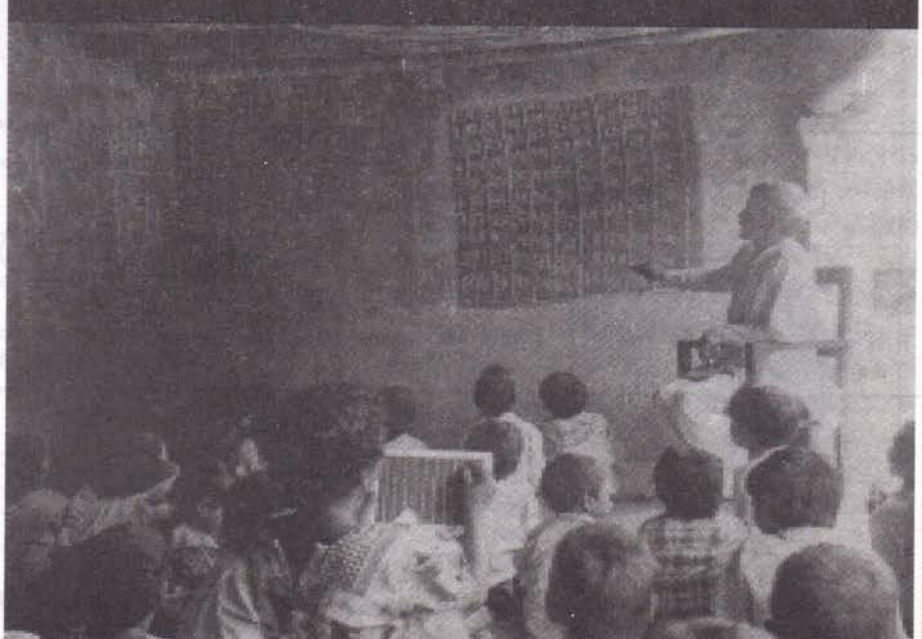

खिलौनों का संसार

इस लेख में आपके लिए अरविन्द गुप्ता की किताब (टेन लिट्टल फिन्गर्स) में से कुछ सरल, मनोरंजक और अजब वैज्ञानिक खिलौने प्रस्तुत हैं जिनको आप बनाकर मज़ा ले सकते हैं। यह खिलौने बच्चें भी आसानी से बना सकते हैं। जैसा कि आप देखेंगे कि इन खिलौनों को बनाने के लिए बहुत ही सस्ती सामग्री चाहिए - इस्तेमाल किया गया कागज, बॉल पेन की पुरानी रीफिल, पीने मे इस्तेमाल किए जाने वाली स्ट्रा, सिगरेट के पैकेट आदि। इन खिलौनों को बना कर मजा लीजिए और यदि आपके पास कुछ बार बनाने का सुझाव हो, जिसका हम उपयोग कर सकें, तो हमे बताइए।

आगे आने वाले अंकों में हम प्राथमिक कक्षाओं में किए जा सकने वाले विज्ञान के प्रयोगों और गतिविधियों पर रोशनी डालेंगे।

उछलने वाला मेंढक

यह कागज का एक बहुत ही उम्दा खिलौना है। इसके लिए एक विशेष नाप का आयताकार कागज चाहिए जिसकी लम्बाई उसकी चौड़ाई से दुगनी हो। मेंढ़क में कागज को ही मोड़कर बनाई गई एक स्प्रिंग होती है। जब आप स्प्रिंग को दबाते है तो मेंढ़क उछलता और कूदता है।

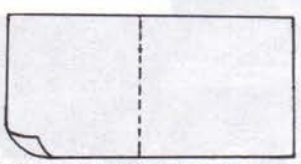

1. 10 से. मी. x 20 से. मी. नाप का एक आयताकार कागज लीजिए। इस कागज को बीच में से मोड़कर दो वर्ग बना लें।

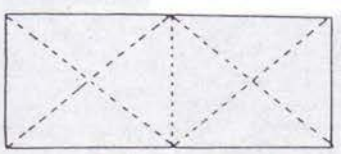

2. दोनों वर्गों को विकर्णों से तिरछा मोड़ दें। चारों तह एक ही दिशा में होनी चाहिएँ। यह दो पहाड़ियों की तरह लगेगा।

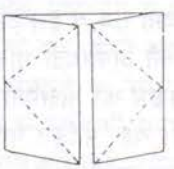

3. कागज़ को पलट दें। पहाड़ी के किनारों को मध्य रेखा पर मोड़ दें।

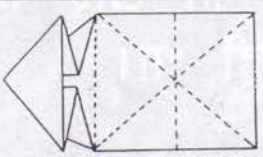

4. कागज़ को पलट दें। बाएं वर्ग के किनारों को बीच से केन्द्र बिन्दु की ओर हल्का सा दबाएँ जिनसे एक त्रिभुजाकार कप जैसा बन जाए।

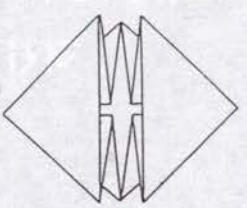

5. दायीं तरफ भी ऐसा ही दोहराएँ। अब आप के पास दो त्रिभुजाकार कप है।

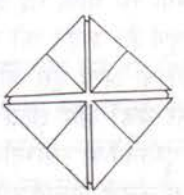

6. दोनों त्रिकोणों के चारों खड़े हुए कानों को दाएँ और बाएँ कोनों पर मोड़ दें। इसके लिए बारी-बारी से हर कोने को मोड़ कर तीसरे कोने तक ले जाएं।

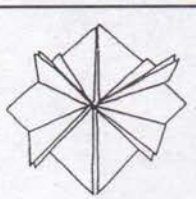

7. पैर बनाने के लिए अन्दर के कोणों को बीच में से मोड़ दें।

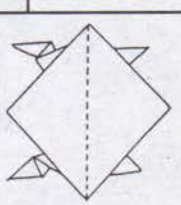

8. इसको जब उल्टा करेंगे तो यह कछुए जैसा लगेगा।

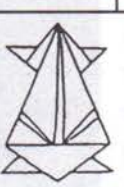

9. अब इसके दाएँ और बाएँ सिरों को रीड़ की हड्डी की ओर मोड़ दे।

10. नीचे वाले त्रिकोण को ऊपर की ओर मोड़िए और पूरी तरह बंद करने के लिए उल्टे हाथ के कान को त्रिकोण की जेब में डाल दीजिए।

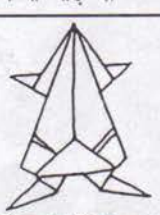

11. इसी तरह सीधा कान भी बन्द कर दीजिए।

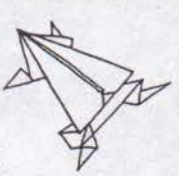

12. मेंढ़क को पहले पीछे की तरफ और फिर आगे की तरफ मोड़कर एक 'Z' आकार का स्प्रिंग बनाएँ।

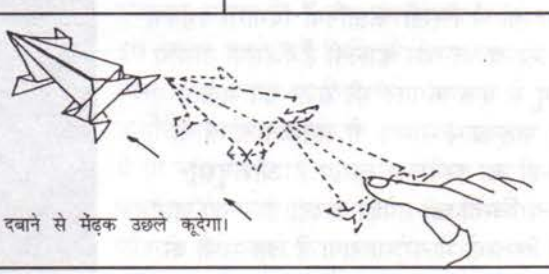

13. स्प्रिंग को दबाने से मेंढ़क उछले कूदेगा।

कागज का घर

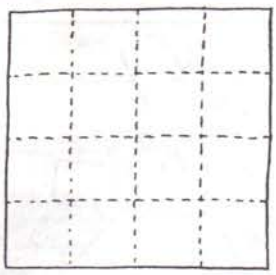

1. एक कड़क वर्गाकार कागज़ लें जिसके एक सिरे की लम्बाई करीब 20 से.मी. हो। इसे मोड़कर 16 छोटे-छोटे खाने बना लें।

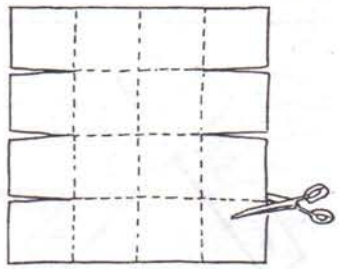

2. बीच की तीन रेखाओं को दोनों तरफ से चौथाई-चौथाई काट लें।

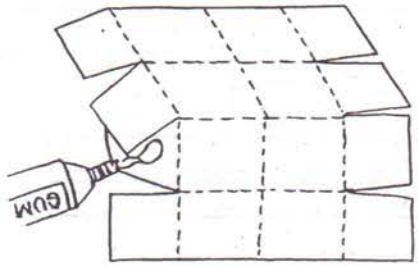

3. बीच वाले एक खाने को दूसरे खाने के ठीक ऊपर रखें और गोंद से चिपका दें। इस प्रकार घर की तिकौनी छत बन जाएगी।

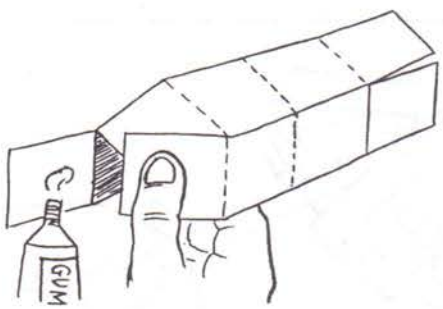

4. घर की दीवारें बनाने के लिए आखिरी के दो खानों को चिपका दें। पूरा घर बनाने के लिए दूसरी तरफ भी ऐसा ही करें।

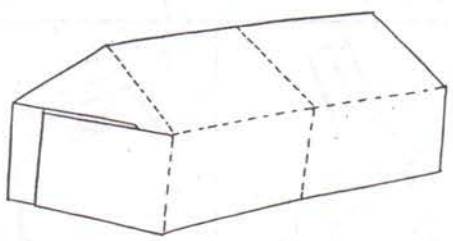

5. अलग-अलग नाप के वर्गों से आप अलग-अलग नापों के घर बना सकते है। इनमें आप दरवाजे और खिड़कियाँ भी बना सकते हैं। घर की बाहरी रेखा आप एक बड़े कार्ड बोर्ड पर भी बना सकते है। बच्चे कार्ड बोर्ड पर कमरे, फर्नीचर, रसोई आदि बना सकते है और फिर उसे कागज के घर से ढक सकते है।

घुमेर

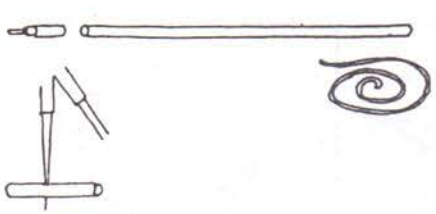

1. एक पुराने बॉल पेन की रीफिल में से 2 से.मी. लम्बा भाग काट लें और डिवाईडर की नोक से उस रीफिल के बीच में एक छेद कर दें।

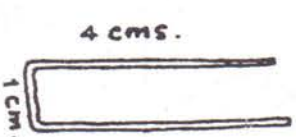

2. 9 से.मी. लम्बी एक पतली तार लें और उसे 'U' आकृति में मोड़ दें।

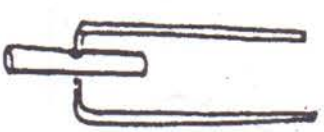

3. रीफिल को 'U' आकृति वाले तार में पिरों दें।

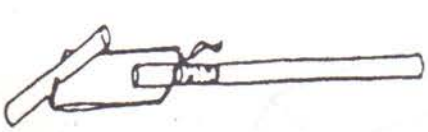

4. घुमेर को घूमने के लिए पर्याप्त जगह छोड़कर, तार के दोनों सिरों को प्लास्टिक की रीफिल पर बांध दें।

5. रीफिल पर फूंक मारने पर घुमेर घूमेगा। ज्यादा तेज गति से घुमाने के लिए तार को ऐसे बांधो कि हवा घुमेर के सिरों की तरफ हो।

तीन पंखुड़ियों वाला पंखा

यह खिलौना दो मिनट में बनता है। इसे बनाना बहुत ही आसान है और इससे खेलने में बहुत मज़ा आता है।

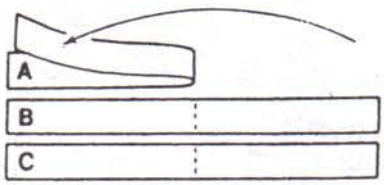

1. एक पुराने पोस्टकार्ड में से तीन लम्बी पट्टियाँ काटें जिसमें प्रत्येक पट्टी की चौड़ाई 1.5 से. मी. हो। तीनों पट्टियों अ, ब, स को बीच में से आधा मोड़ दें।

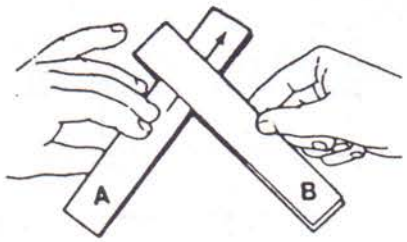

2. 'अ' और 'ब' पट्टियाँ लें और 'अ' को 'ब' के अन्दर इस प्रकार रख दें।

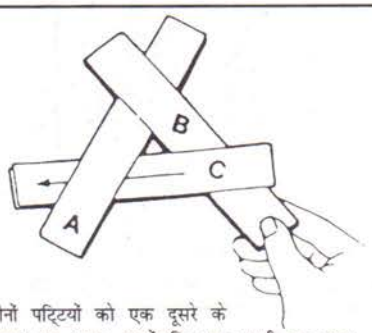

3. तीनों पट्टियों को एक दूसरे के अन्दर इस प्रकार डालें कि एक पट्टी का खुला सिरा दूसरी पट्टी के बन्द सिरे के अन्दर हो।

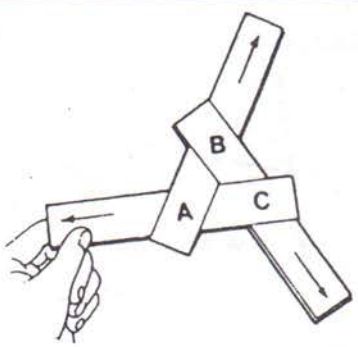

4. पट्टियों को नीचे दिखाई गई दिशाओं में खींचें

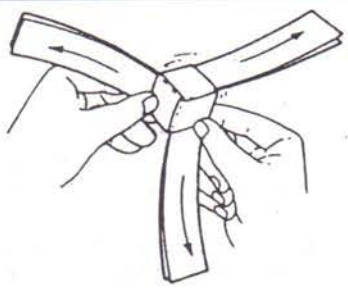

5. जिससे कागज़ की एक कसी हुई गांठ बन जाए। तीनों पट्टियों के आपस में गुंथ जाने से एक कटोरी जैसी चीज़ बनेगी।

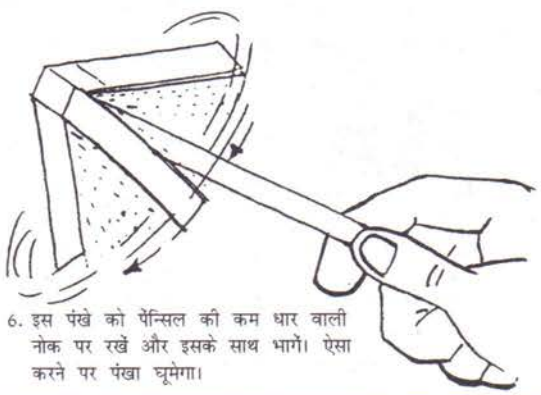

6. इस पंखे को पेन्सिल की कम धार वाली नोक पर रखें और इसके साथ भागें। ऐसा करने पर पंखा घूमेगा।

कूदने वाला मेंढ़क

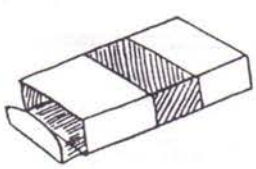

1. एक पुराना सिगरेट का पैकेट लें और

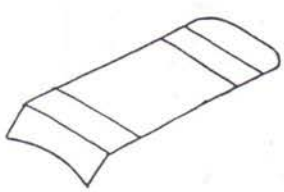

2. इसके अन्दर के पतले गत्ते को निकाल दें।

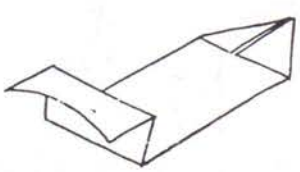

3. तिकोना सर बनाने के लिए ऊपर के दो कोनों को बीच की तरफ मोड़ दें।

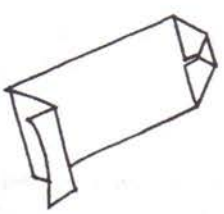

4. तिकोने सर की नोक को अन्दर की तरफ मोड़ दें।

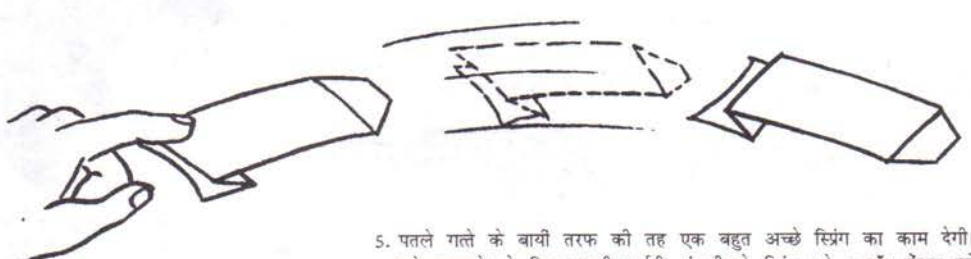

5. पतले गत्ते के बायीं तरफ की तह एक बहुत अच्छे स्प्रिंग का काम देगी। मेंढ़क को पलट दें और उसे उछालने के लिए अपनी तर्जनी अंगुली से स्प्रिंग को दबाएँ। मेंढ़क को हरा रंग दें और उस पर दो आँखें चिपका दें जिससे वह वास्तव में मेंढ़क लगे।

मैरी गो राउण्ड

यह मैरी-गो-राउण्ड पवन चक्की की तरह घूमता है। इसे बनाने के लिए आपको सिगरेट के पैकेट का बाहरी केस, एक दांत कुरेदनी, एक पुरानी रीफिल, एक रबड़, गोंद और कैंची की आवश्यकता होगी।

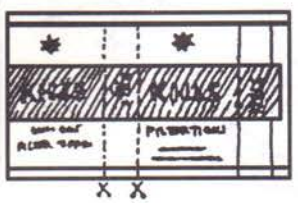

1. सिगरेट के पैकेट के बाहरी केस को खोलें और उसे बिन्दु लगी रेखाओं से काट लें। इस घुमेर के ऊपर तारे की आकार वाली एक छत और नीचे एक चपटा वर्ग होता है। इन्हें चार खम्बों द्वारा जोड़ा जाता है।

2. बड़ा भाग ऊपर का तारा और नीचे का वर्ग बनाएगा। छोटा आयताकार भाग से चार खम्बे बनेंगे।

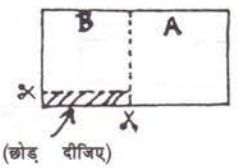

3. बड़े भाग को पलट कर उल्टा कर दें। 'A' वर्ग काटें।

4. इसके विकर्णों को घाटी के आकार में, और इसकी मध्य रेखाओं को लम्बाई में मोड़े जिससे यह...

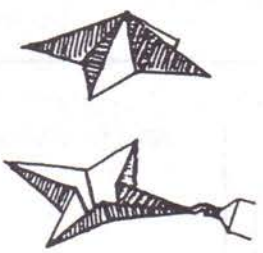

5. सितारे जैसा बन जाए।

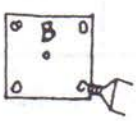

6. बड़े भाग के बाकी बचे हुए हिस्से में से एक छोटा वर्ग 'B' काट लें। इसके चारों कोनों पर गोंद लगा दें और बीच में एक छोटा सा छेद कर दें।

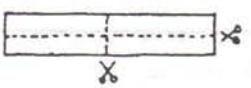

7. छोटे आयताकार भाग की मध्य रेखाओं पर निशान लगाकर उन्हें काट लें

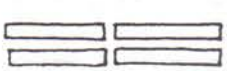

8. ऐसा करने से छोटे-छोटे चार आयत बन जाएँगे।

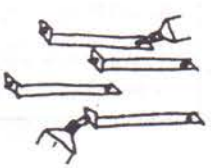

9. इन आयातों में 3 मि.मी. लम्बे पैर मोड़ लें और इन पर गोंद लगा दें।

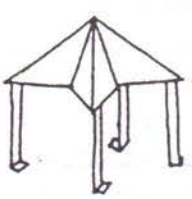

10. इन खम्बों के सीधे सिरों को सितारे में गोंद से इस प्रकार चिपका दें कि सीधे पैर एक ही दिशा में हों।

11. चारों पैरों को वर्ग के तले के चारों कोने से चिपका दें। ऐसा करने पर घूमने वाला भाग पूरी तरह बन जाएगा।

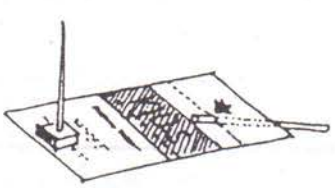

12. डिवाईडर की नोक से रबड़ में एक छेद करें और उसमें दांत कुरेदनी फिट कर दें। रबर को सिगरेट के पैकेट के एक छोर पर चिपका दें। इस पैकेट को बिन्दुओं वाली रेखाओं से मोड़ दे और फूंक मारने के लिए एक खाली रीफिल चिपका दें।

13. फिरकी को दांत कुरेदनी पर रखें और रीफिल से फूंक मारें, हवा सीधे खम्बों पर पड़ेगी जिससे मैरी-गो-राउण्ड घूमेगा।

लूप ग्लाइडर

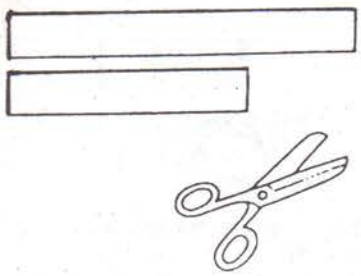

1. कागज़ की दो पट्टियाँ काटें, जिसमें एक का नाप 2 x 6 से.मी. और दूसरे का नाप 2 x 10 से.मी. हो।

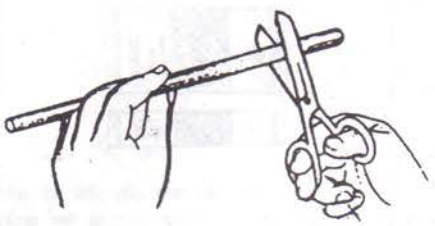

2. पीने में इस्तेमाल की जाने वाली एक स्ट्रा या एक हल्की सी डंडी का 15 से.मी. लम्बा टुकड़ा काटें।

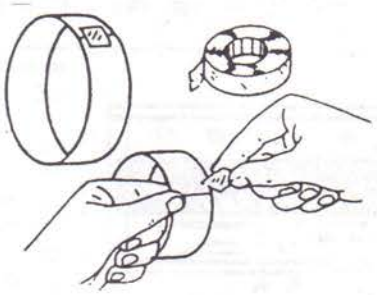

3. छोटी पट्टी का एक छल्ला बनाओ जिससे एक सिरा दूसरे सिरे पर बैठ जाए। इन सिरों को टेप से जोड़ दें। इसी तरह बड़ी पट्टी का भी एक छल्ला बनाएँ।

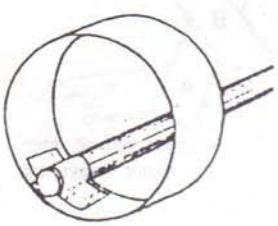

4. अब सेलो-टेप से छोटे छल्ले को स्ट्रा के एक सिरे पर चिपका दें।

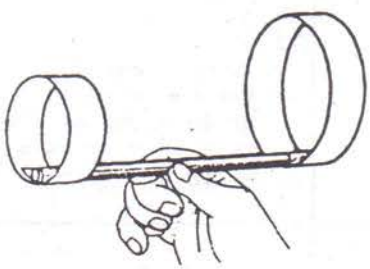

5. बड़े छल्ले को स्ट्रा के दूसरे सिरे पर चिपका दें।

6. ग्लाइडर को उड़ाने के लिए उसका छोटा छल्ला आगे करके उसे हल्के से आगे को फेंके। लूप ग्लाईडर हवा को चीरता हुआ आगे जाएगा। अगर ग्लाईडर लड़खड़ाता है तो दोनों छल्लों को ठीक से जमा लें।

कपड़ों की चिमटी की पिस्तौल

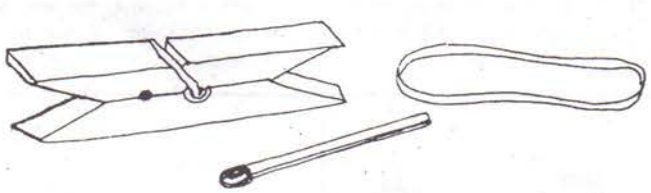

1. इस विशेष पिस्तौल को बनाने के लिए आपको एक लकड़ी या एक प्लास्टिक की कपड़ों की चिमटी, एक रबड़ बैण्ड और एक माचिस की तीली चाहिएगी।

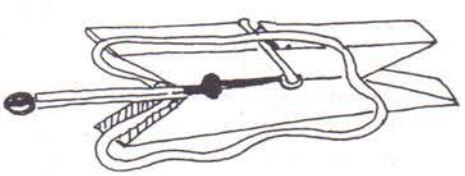

2. जैसा इस चित्र में दिखाया गया है उसी तरह माचिस की तीली और रबड़ को रखें।

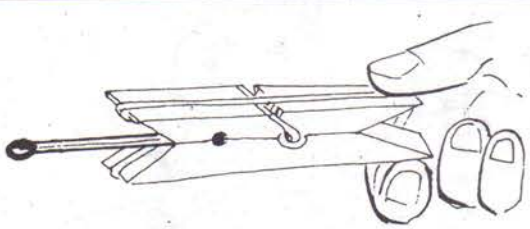

3. रबड़ बैण्ड में तनाव होगा। अगर आप चिमटी को इस जगह से दबाएँगे तो

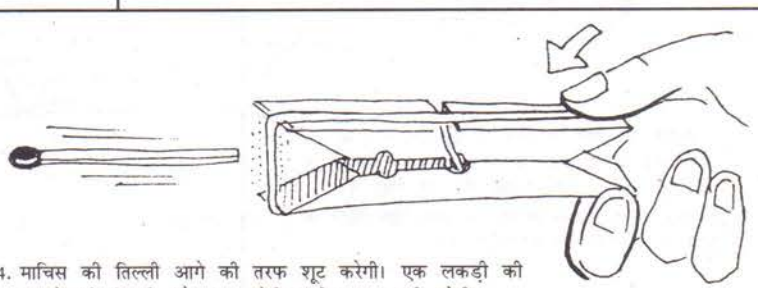

4. माचिस की तिल्ली आगे की तरफ शूट करेगी। एक लकड़ी की कपड़ों की चिमटी और एक मोटी छड़ी ज्यादा सही रहेगी।

संस्थाएँ जो अलग दिखती हैं

सीनी-आशा

चाइल्ड इन नीड संस्था की शहरी इकाई

आधार :

सीनी-आशा (चाइल्ड इन नीड इन्स्टीट्यूट) नामक स्वैच्छिक संस्था की एक शहरी इकाई है, जो कलकत्ता में बच्चों के अधिकारों की रक्षा से सम्बन्धित मुद्दों पर काम कर रही है। CINI आशा बालश्रम की समस्या पर केन्द्रित है और समुदाय को प्रेरित कर वह शिक्षा के द्वारा गाँव के गरीब बच्चों की जिन्दगी की गुणवत्ता सुधारने पर जोर डालती है। इसका बुनियादी विश्वास है कि किसी भी बच्चे को काम नहीं करना है और सभी बच्चों को स्कूल जाना है। यह संस्था यह भी मानती है कि बालश्रम का अंत विद्यालयों में औपचारिक शिक्षा के माध्यम से ही हो सकता है।

1989 में सीनी आशा ने फुटपाथ पर रहने वाले बच्चों के साथ काम करना शुरू किया और, आज यह मध्य और पूर्वी कलकत्ता के धोबीताताला, राजाबज़ार, मोती झील, तलतला, बाम्बगान और नारकेलदगां क्षेत्रों के 3500 बच्चों के साथ काम कर रही है। इन्होंने स्कूल न जाने वाले उन सभी बच्चों को सहारा दिया जो बहुत कठिन परिस्थितियों में रह रहे है और जिनके पास ठीक-ठाक घर नहीं है या कोई घर ही नहीं है, जिन्हें माँ बाप का सहारा नहीं है, जो असुरक्षित पारिवारिक ढांचे और जो असंगठित व पीड़ित समुदाय से सम्बन्ध रखते है।

इस संस्था ने बच्चों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है :-

1. फुटपाथ पर रहने वाले बच्चे।
2. अवैध झुग्गी झोपड़ी में रहने वाले बच्चे।
3. यौन कार्यकर्त्ताओं के बच्चे।

प्रत्येक वर्ग की खास जरूरतों को ध्यान में रखकर सीनी आशा ने उनके लिए अलग-अलग कार्यनीतियाँ बनाई है।

कार्यनीतियाँ :

सीनी आशा के कार्यक्रमों का दीर्घकालीन उद्धेश्य है बच्चों को काम पर से हटाना और इन्हें औपचारिक विद्यालय भेजना। इस उद्धेश्य को पूरा करने के लिए यह संस्था -

- बच्चों को स्कूल जाने के लिए तैयार करती है।
- बच्चों के अन्दर विश्वास और प्रतिकूल व विरोधी वातावरण का सामना करने की क्षमता का विकास करने के लिए कदम उठाती है।
- बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए उन्हें मुख्य धारा से जोड़ती है।

भिन्न-भिन्न परिस्थियों में रहने वाले बच्चों के लिए यह संस्था अलग-अलग स्तर की कार्यनीतियाँ अपनाती है। और फिर, इस संस्था के पास व्यवस्थित संस्थागत मदद के साधन है जो बच्चों को स्कूल आने की तैयारी में सबल देते है। इस प्रकार, सबसे पहले फुटपाथ पर रहने वाले बच्चों को ढूंढा जाता है और उन्हें रात्रि केन्द्रों पर आने के लिए प्रेरित किया जाता है, जहाँ इन्हें पूर्णत: नए तरीके से सोचने सिखाने की शुरूआत की जाती है और ड्रॉप-इन केन्द्रों पर आने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। जिन बच्चों में परिवर्तन आ जाता है और जो फुटपाथ छोड़कर नियमित स्कूल जाना चाहते है, उन्हें ऐसी जगहों पर ले जाया जाता है जिन्हें आधा-घर कहते है। इन आधे घर समान जगहों पर उन्हें अपने हम उम्र बच्चों का साथ मिलता है, यहाँ इन बच्चों का खूब ध्यान रखा जाता है और इन्हें बहुत प्रोत्साहन व मदद मिलती है। यह प्रक्रिया लचीली भी हो सकती है और कई बार बच्चे सीधे रात्रि केन्द्रों से आधे-घर समान जगह पर ले जाए जाते है। अन्तत: धीरे-धीरे इन सभी बच्चों का स्कूल और बोर्डिंग होम्स में दाखिला कराया जाता है। इसी तरह झुग्गी झोपड़ी व अवैध कॉलोनियों में रहने वाले बच्चों को झुग्गियों में स्थित प्रिपेरेट्री विद्यालयों में जाने के लिए तैयार किया जाता है। उनमें से कुछ रेज़िडेंशियल कैम्पों में भी जाते है। एक बार तैयार हो जाने के बाद इन बच्चों को कलकत्ता नगरपालिका के या सरकारी सहायता से चलने वाले या फिर निजी विद्यालयों में डाल दिया जाता है। इस तरह से भर्ती किए गए बच्चों की प्रगति का ध्यान शाम के कोचिंग केन्द्रों द्वारा रखा जाता है। यौन कार्यकर्त्ताओं के बच्चों को स्कूल जाने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु इस बात पर कार्यनीति बनी है कि ये बच्चे दलाल या स्वंय यौनकर्मी न बनें। इसके लिए खास कोचिंग सेन्टर खोले गए है।

अधिक जानकारी के लिए इनसे सम्पर्क करें :

डॉ. के.पप्पू/श्रीमती सुलग्ना रॉय

सीनी - आशा, अमद्रबाढ़ी,
63, रफी अहमद, किदवई रोड,
कलकत्ता - 700016
फोन : 033-4671206/4678192 (कार्यालय)
फोन : 033-4471159/4478046 (घर)
फैक्स : 033-2452706

पुस्तक-प्रेमियों के लिए NBT का उपहार

बुक केस :

संवादपत्र के इस अंक के साथ 'बुक केस दी बैस्ट चिल्ड्रन लिट्रेचर' संलग्न है जो विभिन्न भारतीय भाषाओं में बच्चों के लिए सर्वश्रेष्ठ सामग्री के संग्रह की सूची है। यह सामग्री राष्ट्रीय केन्द्र, नेशनल बुक ट्रस्ट में संकलित की है। इसमें सम्मिलित किताबें देश की बेहतरीन उपलब्ध किताबों में से हैं। बहुत अच्छा हो यदि यह सभी या इनमें से ज्यादातर किताबें संकुल, ब्लॉक और जिला स्तर के विद्यालयों और संदर्भ केन्द्रों के पुस्तकालयों में हों। सी.आर.सी., बी.आर.सी., डायट, आदि में स्कूलों के पुस्तकालयों और किताबों की खरीद के लिए नियोजित राशि इन किताबों को जुटाने के लिए इस्तेमाल की जा सकती है।

प्रश्न. पाठक समूह (रीडर्स क्लब) क्या है ?

उत्तर पाठक समूह एक अनौपचारिक संगठन है जहाँ अध्यापक और बच्चे समय-समय पर मिलते हैं, पुस्तकें पढ़ते हैं, आपस में पुस्तकों पर विचार-विमर्श और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। इसका मुख्य उद्धेश्य है बच्चों में बहुत कम उम्र से पढ़ने की आदत हो। और उन्हें पुस्तकों को देखना और ढूंढ़ना आता हो। पाठक समूह पर एक पुस्तिका संलग्न है।

प्रश्न. पाठक समूह की शुरूआत कैसे करें ?

उत्तर जो व्यक्ति पाठक समूह शुरू करना चाहता है वह इस संवादपत्र के साथ लगे प्रपत्र को भर कर नेशनल बुक ट्रस्ट को इस पते पर भेजें :

बाल-साहित्य के लिए राष्ट्रीय केन्द्र,

नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत

A.5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली - 110 016

फोन : 6564020, 6564540 फैक्स : 6851795

एन.बी.टी. अपने प्रकाशनों का एक सूची-पत्र भेजेगा जिसमें से आप कुल 100/- रूपए मूल्य की किताबें छांट सकते है, यह किताबें पाठक समूह को मुफ्त भेजी जाएंगी।

पाठक समूह स्कूल में कहीं भी बनाई जा सकती है। पुस्तकालय की किताबों की देख-रेख करने की जिम्मेदारी बच्चों को दी जा सकती है। स्टॉक रजिस्टर बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है और किताबों के खोने या खराब होने पर कोई सजा नहीं दी जाएगी।

प्रश्न. पाठक समिति को और क्या सुविधाएं है ?

उत्तर कुल 100/- रूपए मूल्य की किताबों के अलावा समिति को हर महीने एक बुलेटिन (एक प्रति संलग्न है) मिलेगा जिसमें कहानियां, कविताएं, विद्यार्थियों और शिक्षकों के लेख होगें। जिन विद्यालयों में पाठक समिति एक वर्ष तक सफलतापूर्वक चलेगी और प्रतिवर्ष कम से कम एक रिपोर्ट एन.बी.टी. को भेजेगी उन्हें एन.बी.टी. के सभी प्रकाशनों पर 50% पर छूट मिल सकती है। इसके अतिरिक्त, कुछ पोस्टर, दूसरी लिखित सामग्री भी एन.बी.टी. द्वारा पाठक समिति को भेजी जाएगी।

आवेदन पत्र :

आवेदन पत्र की दस प्रतियाँ भी संलग्न है जिनके द्वारा स्कूल शिक्षकों के बी.आर.सी./सी.आर.सी आदि को इस योजना के बारे में जानकारी दी जा सकती है। हम जल्दी ही ब्लॉक और संकुल स्तरों को और आवेदन पत्र भेजने की कोशिश करेंगे।